बदचलन

कविता सिंह

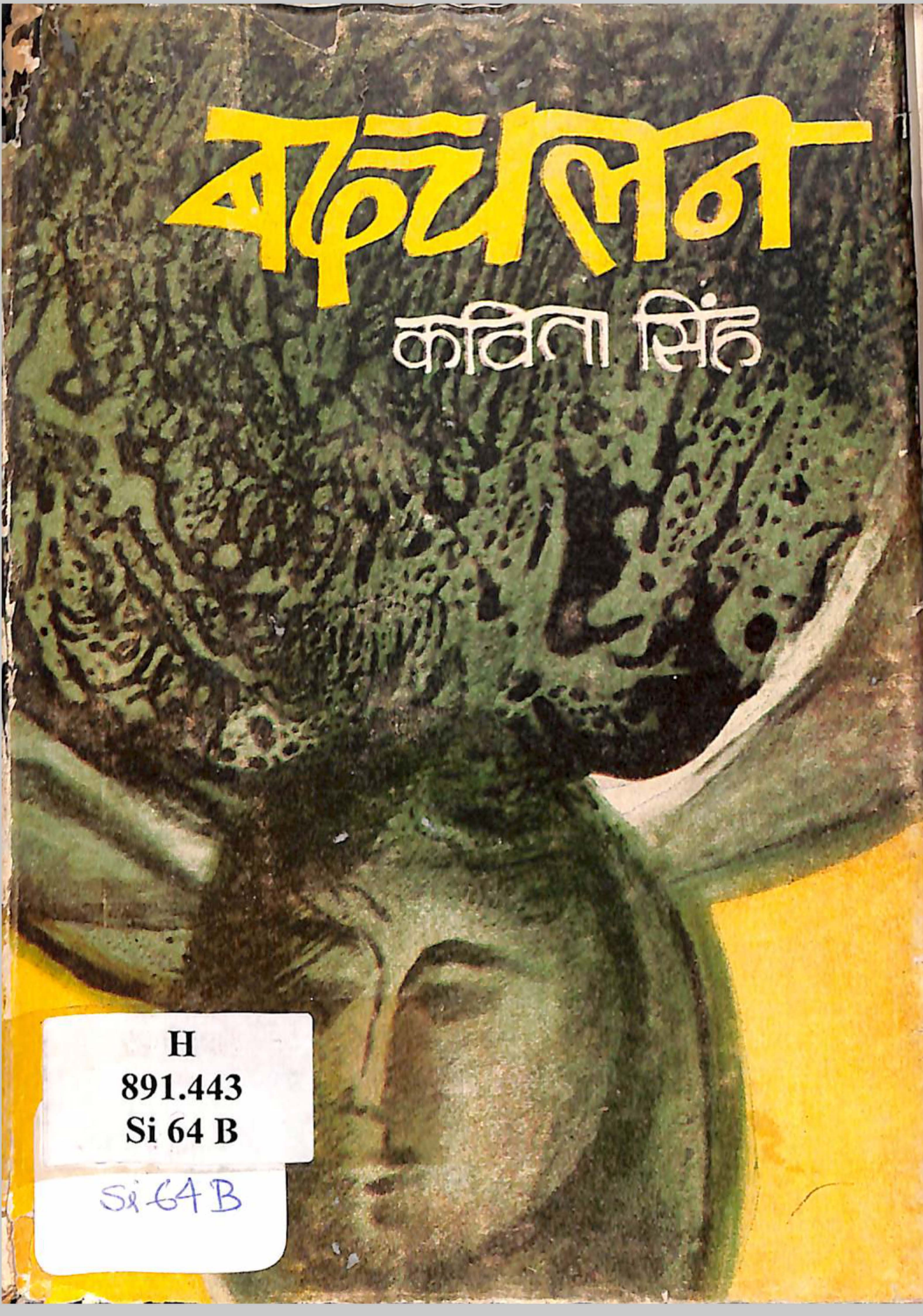

H
891.443
Si 64 B

Si 64 B

'सुनो, यह तन भी एक पवित्र मंदिर होता है; अगर यह एक बार खंडित हो जाए, तो उसकी कभी पूजा नहीं होती।'—अलका ने कहा था।

'तन-मन हर हाल में अछूता और पावन होता है। यह कभी अपवित्र या मैला नहीं होता।'—सूर्य ने कहा था।

लेकिन···जिन्दगी ने साबित किया, पीछे छूटा हुआ इतिहास कभी नहीं मिटता; मन की समूची ईमानदारी और सच्चा समर्पण भी पिछले गुनाह नहीं धो पाते।

- कुछ लोग बहादुर होते हैं—अलका की तरह! टूटते विश्वास भी उन्हें नहीं तोड़ पाते। वे सबकुछ झटककर आगे बढ़ जाते हैं। उन्हें न अपने अतीत पर अफ़सोस होता है, न वर्तमान पर रोष। दुनिया के घिसे-पिटे मानदंड, भले ही अलका को 'बदचलन' ठहराएं, लेकिन क्या वह सचमुच बदचलन थी? या सबल चरित्र की सशक्त मिसाल?
- आम दुनिया का आम आदमी अक्सर अपने संकुचित संस्कार और विश्वासों से मुक्त नहीं हो पाता। 'असाधारण' उसे आकर्षित तो करता है, एकाध पलों के लिए विमुग्ध भी, लेकिन उसे स्वीकार लेने का साहस उनमें नहीं होता। वे 'सूर्य' की तरह संकुचित दायरे में—अतिसाधारण बनकर रह जाते हैं।

कुल छः मुलाकातों में जीवन के मूलभूत विश्वासों के बनने-टूटने और उनके खंडहरों में जन्म लेते हुए जीवंत और सार्थक चरित्र की दिलचस्प कथा।

'सु
क
।'-
'र
कर्म
।
:
तहा
ार स
ब
१

०

बदचलन

(उपन्यास)

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नयी दिल्ली • जयपुर • इलाहाबाद

बदचलन

कविता सिंह

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 94322
Date 9-2-2000
SIMLA.

H
891.443
Si 64 B

मूल बंगला से हिंदी में अनूदित

अनुवादक
सुशील गुप्ता

Library IIAS, Shimla
H 891.443 Si 64 B
00094322

मूल्य : Rs 25.00
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण १९८३ / सर्वाधिकार : लेखकाधीन / सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, मौजपुर, दिल्ली-११००५३ में मुद्रित।
[92-9-12-1182/1N]
BADCHALAN (Novel) by Kavita Singh
Rs 25.00

अलका को मैंने सबसे पहले उस दिन देखा था, जिस दिन रूमा ने मुझे रिजेक्ट कर दिया था।

जिंदगी के कोई-कोई दिन जाने कैसे तो होते हैं! आम दिनों से बिल्कुल अलग—ढूह की तरह बेडौल। धूम-धड़ाम करते हुए एकबारगी फट पड़ते हैं।

जिस दिन रूमा अपने पिता के साथ राजधानी एक्सप्रेस से दिल्ली जा रही थी, मेरी उन्नीस वर्षीय जिंदगी का वह दिन भी बिल्कुल वैसा ही था। आज भी जब आंखें मूंदकर उस दिन को याद करता हूं तो मन में जाने कितनी-कितनी तस्वीरों का हुजूम तैर आता है।

सबसे पहले रूमा की मां का ख्याल आने लगता है। कल्याणी मौसी का वह उदास और दुखी चेहरा। धुंधलाया और निर्विकार!

रूमा तथा अन्य लोग जब अपना फैशनेबल सूटकेस और होल्डॉल लेकर घर से निकल रहे थे, उसकी मां उस वक्त दरवाजे पर खड़ी थीं। उनके होठों पर हल्की-सी मुस्कान थी। फ्लैट के दरवाजे पर यात्रा के

सगुन के लिए पानी से भरा लोटा बिल्कुल अनमेल लग रहा था। रूमा या उसके डैडी ने एक बार भी पीछे मुड़कर देखने की तकलीफ नहीं की। वे लोग तेज कदमों से नीचे उतर गये थे। मेरी भी निगाहें उस दृश्य पर गड़ गयी थीं। दरवाजे का पल्ला थामे मौसी खड़ी-खड़ी अचानक बिल्कुल पत्थर बन गयी थीं। उनके होठों की मुस्कान गुम हो चुकी थी। चेहरा ऐसा सफेद हो उठा था, मानो खून की एक बूंद भी बाकी न हो।

रूमा और उसके डैडी को पहुंचाने के लिए मैं भी हावड़ा स्टेशन तक साथ गया था।

उसी दिन राजधानी एक्सप्रेस को पहली बार देखा था। अपनी उन्नीस वर्षीय मध्यवर्गीय जिंदगी में, थर्ड क्लास के अलावा और किसी क्लास में कभी चढ़ा भी नहीं था। ट्रेन से सफर के नाम पर मुझे हमेशा भीड़, पसीने की दुर्गंध, फिनाइल, पेशाब, थूक—इन्हीं सबका ख्याल आता था।

वहां अचानक न कोई बात हुई न चीत। उन लोगों के साथ जब स्टेशन पहुंचा तो नियॉन-साइन की चमचमाती रोशनी में, एयरकंडीशंड राजधानी एक्सप्रेस की रंगीन कांच की खिड़कियां और कालीन बिछे ठाठ-बाट देखकर, मुझ-जैसा अभावग्रस्त मोहताज लड़का अगर अचकचा न जाता तो और क्या करता ?

लंबे-लंबे परदों से ढंकी खिड़कियों वाली राजधानी एक्सप्रेस। इस ट्रेन से सफर करने वाले मुसाफिरों की शक्ल-सूरत और अदब-कायदे ही बिल्कुल निराले थे। किसी के हाथ में हलका-सा हैंडबैग, किसी के हाथ में फोमवाला तकिया और हल्के-फुल्के कंबल का बंडल। सब के सब सुदूर दिल्ली तक जानेवाले मुसाफिर थे। रूमा ने ही मुझे बताया कि उस किस्म के लोग इसी तरह यात्रा करते हैं। बस, रात-भर के बाद ही दिल्ली। एयरकंडीशंड ट्रेन से उतरकर सब अपनी-अपनी गाड़ी में बैठ जायेंगे और वहां से सीधे अपने घर के एयरकंडीशंड कमरे में पहुंचकर, बिस्तर पर आराम फरमाएंगे। बस।

हां मैं यानी सूर्य राय उस दिन रूमा के साथ-साथ नहीं बल्कि उसके

पंख लगे पैरों के सहारे प्लेटफार्म पर इस छोर से उस छोर तक चक्कर लगाता रहा। हालांकि ऐसे घूमने की कोई वजह नहीं थी। फिर भी हम चहलकदमी करते रहे। यूं मैं यह भी बहुत अच्छी तरह समझ चुका था कि रूमा के साथ मेरा जो होना था, वह हो चुका। अब नया कुछ घटने की कोई संभावना नहीं। अब सब-कुछ खत्म ! दी एंड। लेकिन फिर भी मैं इन आखिरी पलों का मोह जैसे छोड़ नहीं पा रहा था ! अभी तक कुल मिलाकर महज उन्नीस वर्ष ही तो गुजरे थे। इस उम्र में जाने कैसी विलक्षण आस्था, अटूट विश्वास दिल की गहराइयों में बिल्कुल धंसकर रह जाता है। मेरे अंदर भी शायद कोई उम्मीद अभी जिंदा थी। मैं सोच रहा था, इन आखिरी लमहों में शायद कुछ अद्भुत घट जाए।

रूमा मेरी जिंदगी में आने वाली पहली लड़की थी। रूमा को छोड़ कर किसी और को अपना समझने की बात, मैं सपने में भी नहीं सोच सकता था।

उस दिन रूमा के साथ-साथ चलते हुए अचानक मेरे मन में सवाल जगा था। हालांकि हम दोनों हम-उम्र थे, लेकिन इन सब मामलों में वह भी क्या मेरी ही तरह है ? शायद नहीं। रूमा जैसी लड़कियां कितनी सहजता से पिछली यादों को मिटा सकती हैं, अपने को बेच सकती हैं।

अभी कुछ दिन पहले की ही तो बात है। उन लोगों ने अपने घर का सारा सामान नीलाम में बेच डाला था। हमारे श्यामबाजार के इलाके में इस तरह की यह पहली घटना थी।

यह बात भी मुझे रूमा ने ही बतायी थी कि बदली की नौकरी में ऐसा ही रिवाज है। उसके डैडी के संगी-साथी भी बदली के समय पिछली किसी चीज से मोह नहीं रखते।

इसके अलावा इतने बड़े प्रमोशन पर जा रहे थे, उसके डैडी। उनकी पोजीशन ही तब कुछ और थी। दिल्ली वे काफी बड़े पद पर बुलाये गये हैं। अब ऐसे फालतू, बाबा आदम के जमाने के सामान को पीछे-पीछे कौन घसीटता फिरे ! उंह ! बदनुमा और बदरंग मिनी-

फ्रिज, बकवास डिजाइन का विलायती पलंग, स्टील की अलमारी। ये फर्नीचर दिल्ली जैसे शहर में तो बिल्कुल नहीं चल सकते। हालांकि रूमा की मां ने दवे स्वर में कुछ और ही वताया था, "जानते हो, सूर्य, यह डबल पलंग मेरी पहली तनख्वाह के रुपयों से खरीदा गया था! अपने ब्याह के अगले महीने काफी धूल छानने के बाद हमने पुराने फर्नीचर की दूकान से इसे खरीदा था।" कल्याणी मौसी बेहद ममता से काली पॉलिश वाले पलंग पर हाथ फेरती रहीं, "जब यह अलमारी आयी थी तो इसका रंग था—ग्रे। मैंने फिर से इस पर पीले रंग की स्प्रे-पेंटिंग करायी, ताकि कमरे के पीले रंग से मैच कर सके।"

उस दिन प्लेटफार्म पर जैसे मैं बेवजह चक्कर लगाता रहा था। उस वक्त रूमा की मां भी धूलअंटे असबाबों के ढेर के इर्द-गिर्द चहल-कदमी करती रहीं। सब कुछ समाप्त हो चुका है, यह सच्चाई जानते हुए भी किसी भूत-आत्मा की तरह वे सामान के आसपास चक्कर लगाती रहीं।

काफी दर्दनाक दृश्य था। किसी सजे-सजाये बगीचे से जैसे मौसमी फूलों के पेड़ों को बिल्कुल जड़ से उखाड़कर एक जगह ढेर कर दिया हो। सजी-सजायी गृहस्थी के माल-असबाब मानो अपनी व्यवस्थित जगह से उखाड़कर एक कोने में ढेर कर दिये गये थे। सारा सामान किसी कचोटभरी याद का बेजान, श्रीहीन टुकड़ा लग रहा था।

रूमा और उसके डैडी ने ये सब असबाब बेचकर आधुनिक फैशन के सामान खरीदे थे। मॉडर्न सूटकेस, होल्डॉल, हैंडबैग! मैंने इस किस्म के सामान पहले कभी नहीं देखे थे।

जिस वक्त रूमा का सामान नीलाम हो रहा था, मैंने बेवकूफों-सा सवाल किया था, "रूमा, मौसी तो कुछ दिन कलकत्ते में ही रहेंगी न? फिर तुम लोग, घर का राई-रत्ती सामान बेच डालने में क्यों लगे हो? आखिर मौसी को भी तो कुछ सामान की जरूरत होगी?"

रूमा ने चिड़िया की तरह आंखें नचाकर कहा, "तुम तो, यार बिल्कुल बौड़म हो, सूर्य! अगर इतना सारा सामान बेचा न जाता, तो मेरे और डैडी के लिए नयी-नयी चीजें खरीदने के पैसे कहां से आते?

और फिर मां तो यह फ्लैट रख भी नहीं रहीं ! डैडी अपने दोस्त को यह फ्लैट दे जायेंगे ! मां तो अपने लिए शायद कोई छोटा-मोटा कमरा किराये पर लेने वाली हैं या फिर स्कूल के होस्टल में चली जाएंगी !"

"मौसी दिल्ली कब जाएंगी ?" मैंने बुद्धुओं की तरह दुबारा सवाल किया था।

"जिस वक्त भी मां चाहेंगी—उसी वक्त !" अपने कंधे नचाकर उसने उपेक्षा-भरी आवाज में कहा, "ऐसा टिटपुंजिया-सा स्कूल और वैसी ही फालतू-सी नौकरी। इसके लिए इतना मोह ! हुंह !"

उसके साथ चलते हुए, मुझे पहली बार यह आशंका हुई कि उसकी मां शायद बहुत जल्दी दिल्ली न जाएं। ये बाप-बेटी मिलकर मुट्ठी-मुट्ठी भर झूठ बोले जा रहे हैं और हम सबकी आंख में धूल झोंक रहे हैं।

कई दिनों पहले रूमा ने ही कहा था, "तुम्हें पता है सूर्य, डैडी के ट्रांसफर के मामले में मां अजीब तरह से पेश आयीं। इससे पहले उन्होंने ऐसा कभी नहीं किया। मुझे आज भी धुंधली-सी याद है, डैडी जब पूना ट्रांसफर हुए थे, मां कितनी खुश-खुश डैडी के साथ गृहस्थी बसाने चल पड़ी थीं। जानते हो सूर्य, उन दिनों मां डैडी से भी अच्छी नौकरी करती थीं। कलकत्ते के एक सरकारी कॉलेज में प्रोफेसरी करती थीं। लोगों के सामने बाकायदा फख्र से बताने के लायक, इज्जतदार नौकरी ! लेकिन वह डैडी से अलग नहीं रह सकती थीं, सो लगी-लगायी नौकरी छोड़कर उनके साथ हो लीं। उसके बाद, जब हम दुबारा कलकत्ता लौटे और उन्हें कोई बढ़िया नौकरी नहीं मिल सकी तो वे एक रद्दी से स्कूल में टीचरी करने लगीं। अच्छा, तुम ही बताओ इसका कोई मतलब होता है ? आखिर मेरे डैडी की भी तो कोई प्रेस्टिज है ?"

सच ही तो रूमा को गणित समझाने के लिए कभी-कभार मैं उनके फ्लैट में भी जाता था। रूमा के डैडी शाम को अक्सर अपने यार-दोस्तों के साथ अपने बेड-कम-ड्राइंगरूम में गप्प-सड़ाकों में मशगूल रहते। अभिजात्य महफिल। उस महफिल में कुछ विदेशी तथा गैर-बंगाली बंधु-बांधवी भी शामिल रहते। और रूमा की वह एयर-हॉस्टेस आंटी

मिली भी हमेशा मौजूद रहतीं। मिली दत्त, देखने में अपूर्व सुंदरी! पतली बेंत की तरह लहराता हुआ चेहरा। वे हमेशा नाभिदर्शना साड़ी बांधती थीं। हेयर-ड्रेसिंग सैलून से बाल सेट कराती थीं। बेहद चुलबुली और पटर-पटर बतियाने की अदा।···विलायती शराब के फव्वारे फूटते रहते थे और हमेशा विदेशी गानों के रिकार्ड बजते रहते थे। कभी-कभी नशे में धुत्त होकर इतना हो-हुल्लड़ मचता कि कमरा ही जैसे फट पड़ने को होता और उनका पूरा गैंग गाड़ी और स्कूटरों में भरकर बाहर तफरीह के लिए चल देता या फिर कल्याणी मौसी ही अपना छोटा-सा बटुआ उठाकर निस्संकोच बाहर निकल जाती थीं।

रूमा मुंह बिचकाकर रिमार्क कसती, "देखा सूर्य, मां बाहर चल दीं। अच्छा, तुम ही बताओ, जिन कपड़ों में वह बाहर निकली हैं, वे क्या बाहर जाने लायक हैं? छिः छिः, मारे शर्म के मैं गड़ जाती हूं। कैसी फूहड़, मुसी-सी अधमैली साड़ी थी!"

मैंने समझाना चाहा, "तुम लोगों के पास कमरे कम हैं न! मौसी आखिर कितनी देर रसोई में बैठी रहतीं? तकलीफ होती है न!"

"अरे नहीं, मां पार्टी में भी तो शामिल हो सकती हैं। और कुछ नहीं तो डैडी को कंपनी दे सकती हैं।"

लेकिन मुझे यह बात बिल्कुल असहज लगती थी। कल्याणी मौसी उस शराब पार्टी और हो-हुल्लड़ में शामिल हो सकती हैं, यह बात उनकी बेटी भले ही सोचती हो, लेकिन मेरे लिए इसकी कल्पना भी असंभव थी।

रूमा ने बिफरते हुए कहा, "आजकल मैं भी गौर कर रही हूं, मां डैडी के यार-दोस्त या उनकी तरक्की कतई सहन नहीं कर पातीं। मां तो अजीब हो गयी हैं। दिन-पर-दिन कैसी बुढ़ाती जा रही हैं। बिल्कुल नीरस होती जा रही हैं। पता नहीं, तुमने मार्क किया है या नहीं, आजकल डैडी की बगल में मां बिल्कुल सूट नहीं करतीं।"

हां, रूमा ने सच कहा था।

उसके डैडी उम्र से काफी कम दिखते थे।···बिल्कुल छोकरे से। लंबा इकहरा बदन। गेहुआं रंग। स्मार्ट। ड्राईक्लीन की हुई खूबसूरत

डिजाइनवाली टेरीलीन की कमीज। बिल्कुल क्रीज रहित। पैरेललनुमा ट्राउज़र। अब तो उन्होंने बालों का फैशन भी बदल दिया था। सो खासे कवि-जैसे लगने लगे थे। लंबी-लंबी जुल्फें। लाल रंग के एक झकझक स्कूटर पर सर्राटे से आया-जाया करते थे। किसी-किसी दिन उनसे कसकर लिपटी हुई मिली दत्त भी आया करती थी। हम दोनों उसकी दी हुई कैडबरी-चाकलेट आधी-आधी बांट लिया करते। मुझे लगता जैसे मेरे सामने परदे पर कोई रंगीन फिल्म चल रही हो, या मैं कोई विज्ञापन देख रहा हूं। यह विज्ञापन कभी स्कूटर का, कभी साड़ी या टेरीलीन की कमीज का या फिर फ्लैक्स के जूतों में बदलता रहता था।

उन दिनों रूमा के डैडी को 'मौसाजी' न कहकर 'नीतिश'दा' कहकर बुलाने का मन होता था।

कभी-कभार मुहल्ले के गली-चौराहों पर अड्डेबाज छोकरों के झुंड में शामिल होकर फब्तियां कसने का भी जी होता था, "क्यों बड़े भाई, खासा ऐश कर रहे हो! हां, हां, चलाए जाओ बेटा! चलाए जाओ!"

करीब सात-आठ साल पहले की ही तो घटना है। रूमा का परिवार ट्रांसफर होकर कलकत्ता आया था। हमारे बगल वाले फ्लैट में पड़ोसी किरायेदार होने से पहले, वे लोग पार्क-सर्कस की तरफ रहते थे। साल-भर पहले वे लोग हमारे बगल वाले फ्लैट में आ बसे। करीब आठ महीने पहले रूमा से मेरी दोस्ती हुई थी और करीब चार महीने हुए—हम दोनों इश्क की दुनिया में गोते लगा रहे थे।

मेरे बापू एक व्यापारिक फर्म में बड़े बाबू की हैसियत से काम करते हुए नौकरी के आखिरी सालों में थे। उनकी तनख्वाह रूमा के भाईनुमा डैडी के जितनी थी, जबकि वे नौकरी के बारहवें साल में ही थे। हमारे फ्लैटों के कमरों की गिनती और डिजाइन प्रति स्क्वायर बिल्कुल हूबहू होते हुए भी भीतरी साज-सज्जा और रहन-सहन में आकाश-पाताल का अंतर था।

रूमा के डैडी अपने दो कमरों वाले फ्लैट को बेहद शानदार और टिप-टाप रखते थे। उनके यहां फ्रिज, प्रेशर-कुकर वगैरह तो बहुत पहले

से ही थे, इसके अलावा भाड़े पर मिस्त्री बुलाकर और भी दुनिया-भर के आधुनिक साजो-सामान जुटाये गये थे। लेकिन रूमा की मां शुरू से ही जरा ढीलमढोल दिखती थीं। रूमा के डैडी के यहां चौबीस घंटों का नौकर नहीं था, महज ठेके की नौकरानी से ही सारा काम चलाना पड़ता था। स्कूल और घर—दोनों का इंतजाम ठीक-ठाक रखने में मौसी अक्सर हड़बड़ाती रहती थीं।

इन्हीं सब मामलों को लेकर कभी-कभार रूमा के डैडी से उनकी बक-झक भी हो जाती और मौसाजी गुस्से से आगबबूला होकर अपनी लाल स्कूटर हांकते हुए घर से बाहर निकल जाते थे।

बगल वाले कमरे में रूमा को हिसाब समझाने का बहाना करते हुए मैं डर के मारे पसीने से नहा जाता था।

रूमा खीझ के मारे फट पड़ती थी, "मेरी मां न, अजीब औरत है! देख लिया न, सूर्य? डैडी बेचारे बाहर चले गये! असल में मां आज-कल डैडी की एक भी बात बरदाश्त नहीं कर पातीं! मिली आंटी को लेकर भी मां के मन में जलन होने लगी है! हालांकि मिली आंटी की कोशिश और तदबीरों की वजह से ही डैडी का प्रमोशन हुआ है!"

यही रूमा जब पहले-पहल हमारे मुहल्ले में आयी थी, और हमारी जान-पहचान हुई थी, तो शुरू-शुरू में कुछ और ही कहा करती थी।

शाम को जब उसके डैडी बाहर तफरीह के लिए निकल जाते थे, तो असंतुष्ट लहजे में राय जाहिर करती, "देखो तो, सूर्य, डैडी कितना अन्याय करते हैं! अभी-अभी तो वे काम से वापस लौटे थे! जरा देर हमारे साथ बैठते! नहीं—फट फिर बाहर चल दिये! तुम्हीं बताओ, मेरी मां को अकेलापन नहीं सालता होगा?"

उस दिन यूं ही बेवजह प्लेटफॉर्म पर रूमा के साथ-साथ टहलते हुए अचानक मैंने महसूस किया, रूमा बहुत से मायनों में बिल्कुल अपने डैडी जैसी है। व्यवस्थित, महत्त्वाकांक्षी और हिसाबी। जिस ढंग से वह अपने सामान की निगरानी कर रही थी, चीजें संभाल-संभालकर रख रही थी, वह देखने लायक था।

दरअसल, मैं ठहरा साधारण मध्यवर्गीय बंगाली घर का सीधा-सादा

लड़का। हमारे यहां लक्ष्मी-चालीसा का पाठ होता है, सत्यनारायण की कथा में शिन्नी चढ़ायी जाती है। मेरी मां घर पर सिर्फ साड़ी-शमीज में ही काम चला लेती थी। मेरे बापू बनियान पहने-पहने ही बाजार निकल जाते थे। हमारे घर में एक अदद तख्तपोश, काठ की एक आलमारी और एक मेज के अलावा कोई विशेष फर्नीचर भी नहीं था। इसीलिए रूमा के साथ की यह नयी जीवन-यात्रा मेरे लिए हैरतंगेज घटना थी।

वैसे भी रूमा का स्मार्ट लेकिन सीधा-सच्चा व्यवहार मेरे लिए काफी फख्र का विषय था। रूमा मेरी मां या भाभी की तरह बिल्ली या बुद्धू-बक्काला नहीं, बल्कि काफी चुस्त-दुरस्त दिखती थी। मानो यह मेरी बहुत बड़ी विजय थी। उससे कुछेक हाथ की दूरी पर, जब मैं अपने फ्लैट के तख्तपोश पर, लाइन से लेटे हुए भाइयों के साथ पड़े-पड़े आंखें मूंदकर अपनी और रूमा की समवेत जिंदगी के सपने देखा करता था, तब मेरे मन की गहराइयों में रची-बसी रूमा, मेरे अंतस से निकल-कर अपने असली स्वरूप और परिवेश में मेरे सामने आ खड़ी होती थी।

मेरी आंखें देखा करतीं—रूमा फूलों की प्रिंटेड हाउसकोट पहने, हमारे डनलप पिलो वाले बिस्तर के पास नरम-मुलायम हाथों से जाली-दार दूधिया मसहरी हटाकर अंदर आयी है। मैं साटन की रजाई ओढ़-कर गहरी नींद सोया हूं। अलसुबह वह काफी का गरम प्याला मेरे होंठों से लगा देती है। रूमा के पास वह सब कुछ था, जो हमारे श्याम-बाजार इलाके में रहने वाले सत्तरह-अठारह साल की उम्र के लड़के-लड़कियों के पास बिल्कुल नहीं था। मेरा मतलब है, रूमा के पास अपना एक निजी कमरा था। उस कमरे को रूमा दूकान के शो-केस की तरह झकाझक सजाये रखती थी।

मुझे आज भी वह शाम याद है, जब मैं रूमा लोगों को विदा करने स्टेशन गया था। उनका सामान उतारने-चढ़ाने में मेरे हाथ खुद-ब-खुद आगे बढ़े थे। अचानक मुझे होश आया कि सामान उतारने-चढ़ाने में, मेरे साथ जो लोग काम कर रहे थे, वे रूमा के डैडी के दफ्तर के अर्दली

वगैरह थे। मैं अपना-सा मुंह लेकर अलग हो गया।

उस दिन सब कुछ कैसा खाली-खाली लगा था। मुझे सचमुच नहीं मालूम कि किस प्रकार खर्च को फिजूलखर्च कहा जाता है! लेकिन यह क्या वही रूमा थी, जिसके बारे में मुझे कभी मुगालता था कि मैं उसे हिसाव लगाना सिखा रहा हूं? जिसने मुझे गंगा-तट के अंदर को धंसे चमचमाते हुए रेस्तरां से परिचित कराया था, जाने कितने दिनों शाम की रंगीन झिलमिलाती रोशनी में गंगा नदी का नजारा देखते हुए हमने वहां हॉट-डॉग और कॉफी का नाश्ता किया था? क्या यह वही रूमा है, जिसके साथ हाथों में हाथ डाले एक-दूसरे से सटे-सटे हम दोनों अली-पुर के हॉर्टिकल्चर गार्डेन और विक्टोरिया के चक्कर लगाया करते थे?

उस शाम उसी रूमा के आसपास मैं नौकरी से बरखास्त कर दिये गये नौकर की तरह डोल रहा था। वेवजह! वेमकसद!

आज भी मेरी आंखों के आगे रूमा की वह अहंकार मुद्रा तैर जाती है। यह वात अलग है कि उस दिन के बाद फिर किसी दिन मुझे उसका वह अहंकारी रूप देखने को नहीं मिला। उस शाम रूमा टहल रही थी। कंधे पर एक अद्भुत डिजाइन का फ्लास्क। हाथ में शुद्ध चमड़े का लंबा-चौड़ा हैंडवैग।

वैग दिखाते हुए रूमा ने ही मुझे वताया था कि आजकल इस किस्म का वैग बिल्कुल आधुनिकतम फैशन है। उसने मुझे उस वैग की बारी-कियां समझाते हुए कहा, "इसकी फिनिशिंग देख रहे हो न? यह असली चमड़े का बना है। हालांकि न्यूयार्क में इसकी नकल का सस्ता वैग भी मिलता है।"

मेरी विस्मय-विमुग्ध दृष्टि रूमा के हिलते हुए होठों पर अटकी हुई थी। उस शाम रूमा ने भगवा रंग का नया स्कर्ट और काले रंग की ब्लाउज पहनी थी। गले में लॉकेट की जगह एक नयी घड़ी झूल रही थी। सोने की चमचमाती हुई कीमती गोल घड़ी। रूमा सिर्फ दिल्ली की ही बातें किए जा रही थी। उसकी आंखों में मानो यहीं समूची दिल्ली उजागर हो उठी थी। मानो वह अपने डैडी या राजधानी एक्स-प्रेस से भी पहले दिल्ली पहुंच चुकी थी।

उस दिन मैं मन-ही-मन हिसाब लगाता रहा। यह आखिरी मौका था। रूमा से कुछेक मुद्दों पर बातें कर ही लेनी चाहिएं। लेकिन अफसोस की बात तो यह थी कि अन्य दिनों की तरह उस दिन भी रूमा को सामने पाकर, मेरे होशोहवास बिल्कुल गुम हो गये थे।

रूमा को देखते ही मुझ पर जाने कैसा नशा छा जाता था। कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ कि उससे बातें करते-करते या उसके साथ चलते-चलते अचानक ही जादू सरीखा लगता है, मानो मैं कोई सपना देख रहा हूं। बात दरअसल यह थी कि रूमा के नैन-नक्श, आंखें, छाती का उभार और समूची देह-यष्टि···न्यू-मार्केट के शो-केस में लगी कागज के डिब्बे के अंदर महीन पॉलिथीन में लिपटी नयी-नवेली गुड़िया-सी जान पड़ती थी। न जाने क्यों मुझे हमेशा लगता था, रूमा के चारों तरफ सैलोफेन की एक अदृश्य परत लिपटी हुई है, उसे हाथ लगाते ही, शायद चर्र से फट जाएगी। सैलोफेन फटने की आवाज मुझे हमेशा बेहद भयावह और तकलीफदेह लगी है।

वह घटना बहुत पुरानी है। उस समय मैं दस साल का रहा हूंगा। एक बार मैं अपने एक दोस्त की बहन के जन्मदिन पर न्योता खाने गया था। खाना-पीना, हो-हुल्लड़ के बीच उपहारों की मेज पर पड़ी एक गुड़िया की छाती पर गलती से मेरा हाथ पड़ गया। बेचारी गुड़िया की छाती पिचक गयी। और अंदर साउंड बॉक्स के फट जाने की वजह से भयंकर तीखी-सी आवाज निकली। अपने हाथों उस गुड़िया की मर्मांतक हत्या देखकर, मेरे दोस्त की बहन चीखकर रो पड़ी थी। उसी दिन से मेरे मन में जाने कैसा खौफ समा गया था।

इसीलिए रूमा के बेहद करीब होते हुए भी, जितना वह चाहती थी, उतनी दूर तक कभी नहीं जा पाया। लेकिन उसके सान्निध्य के पलों में जाने कितने अजीबोगरीब सवाल मेरे दिमाग में चक्कर काटने लगते थे!

जब रूमा मेरे करीब नहीं होती, जब मैं आत्मकेंद्रित होता था, मसलन शाम को मुहल्ले के पार्क में अकेले-अकेले टहलते हुए या कॉलेज में प्रोफेसरों का लेक्चर सुनते हुए या घर में मां के सामने पीढ़े पर

बैठकर खाना खाते-खाते—मैं आत्मविभोर होकर फैसला करता था कि अब मुझे रूमा से कुछेक मुद्दों पर निश्चित रूप से बात कर लेनी चाहिए। हां, मैं पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक, पवित्रता-अपवित्रता के बारे में उसकी निजी राय जानना चाहता था ।

लेकिन सच बात तो यह थी कि रूमा के करीब आते ही सारे सवाल जैसे बौने हो जाते और टुकड़ों-टुकड़ों में बिखरकर बेहद टुच्चे लगने लगते । रूमा इन तमाम सवालों से ऊपर जान पड़ती थी और मेरे सारे सवाल उसके अद्‌भुत विराट जगत में कहीं गुम हो जाते थे । उसकी दुनिया में सब-कुछ बिल्कुल नया, बिल्कुल आधुनिक और विलायती था, जिसे छूने या पकड़ने का मन हो आता था, जिसमें जीना बेहद सुखद लगता था ।

रूमा का कमरा मुझे बेहद पसंद था । बिल्कुल अनोखा । कमरे की दीवारों पर फिल्मी पत्र-पत्रिकाओं से काटकर लगाये गये बड़े-बड़े ब्लो-अप, विदेशी पॉप गायकों की तस्वीरें । समूचे कमरे में शंघाई, हांगकांग, जकार्ता या जापान से मंगायी गयी चमक-दमक की चीजें । उसकी मुंह-बोली मिली आंटी । उसके डैडी ने उसको तरह-तरह के उपहारों से लाद दिया था । शंघाई के पंखे, हांगकांग का सुनहरा केस, जापानी घड़ी, फ्रेंच सेंट, विदेशी शराब की सुंदर बोतलें ।

रूमा के पास काले रंग की तोंदवाली एक बोतल भी थी जिसमें वह फूल सजाया करती थी । बोतल पर लिखा था—वैट सिक्सटी नाइन ! बाद में तो इस किस्म की ढेरों बोतलें देखने को मिलीं । लेकिन उस दिन बोतल की वह तोंद-फूली, काली आकृति, और उस पर अंकित नाम को देख मैं अचकचा गया था । मैं मन-ही-मन वह नाम कई बार दुहराता रहा । जितनी बार वह नाम दुहराता, उतना ही मजा आता । जिस काली बोतल में ऐसी जादूभरी नशीली शराब रहती है, उस पर मानो एकमात्र यही नाम फबता था ।

पहली बार वह बोतल देखने पर मैं निहायत बेवकूफों-सा सवाल कर बैठा था, "अच्छा, वे दोनों सफेद अक्षर तुम मिटा क्यों नहीं देतीं रूमा ? उन्हें मिटा दो तो कोई उसे शराब की बोतल नहीं समझेगा !

लगेगा यह फूलदान ही है !"

"धत्त्..." रूमा ने मेरे गाल पर हल्की-सी चपत जमाते हुए कहा था, "अरे यही तो लेटेस्ट स्टाइल है, लेकिन तुम यह सब नहीं समझोगे सूर्य, बिल्कुल नहीं समझोगे।"

वही रूमा, ठीक उस टिनवाले सिपाही और नाचनेवाली गुड़िया की कहानी की तरह जो एक कांच के घर में रहा करती थी और उस पार कई रंगों वाला विशाल राजमहल था, नाचती-गाती, रह-रहकर अपनी छलक दिखाने वाली गुड़िया-सी जान पड़ी थी ! और मैं मानो उसकी गुणमुग्धा टिन का लंगड़ा सिपाही था, जो अचानक खिड़की से बाहर गिर पड़ा था और नदी की लहरों में गुम हो गया था।

वही रूमा, जिस दिन राजधानी एक्सप्रेस में बैठकर दिल्ली चली गयी, वह दिन वाकई बेहद अनोखा और अद्भुत था।

ट्रेन ने बिल्कुल ठीक समय पर प्लेटफार्म छोड़ा था। रूमा भी ठीक उसी वक्त, अपनी आरामदेह सीट से उठकर दरवाजे पर आयी। उस वक्त भी उसकी अंगुलियों में फिल्म-फेयर दबा हुआ था। वह अपने डैडी के बगल में खड़ी होकर सबको बाय-बाय कर रही थी।

नीतिश बाबू एक सूखी-सी नकली हंसी बिखेरते हुए बोले, "चलूं, भाई !"

रूमा ने कहा, "बाय-बाय !"

मेरे पैर जहां के तहां जमे रहे। मुझे छोड़कर अगल-बगल की भीड़, रूमा के डैडी के नाते-रिश्तेदार, दफ्तर के लोग मानो टूटे पड़ रहे थे। मेरी तो बुद्धि ही चकरा गयी। मैं दिशाहारा-सा यह पता लगाने की कोशिश कर रहा था कि दरअसल कौन-सी चीज चल रही है—ट्रेन या प्लेटफॉर्म ?

उस दिन मेरा ख्याल था कि वह मेरी जिंदगी का पहला-पहला प्यार था। पहला स्वप्न। 'पहली दोस्ती थी। वही रूमा किसी मक्कार खिलाड़ी की तरह बिल्कुल आकस्मिक भाव से मेरी दीन-दुनिया को एक ठोकर में तहस-नहस करके बिना किसी नोटिस के उठकर चली गयी।

उस दिन और उसके बाद, जब कभी उस हादसे का ख्याल आया

है, मेरी आंखों के आगे हमेशा यही तस्वीर उभरी है—मानो कोई रेत का टीला हो। रेत पर निर्मित रेत के ही नन्हे-नन्हे अनगिनत घर! मैं हाफपैंट पहने, घुटनों के बल, हतबुद्धि-सा बैठा रह जाता हूं और हरे रंग की मिनी-स्कर्टवाली रूमा अचानक लात मारकर मेरा घर गिरा देती है और ऐंठती हुई चल देती है। मैं एकटक उसे जाते हुए देखता रह जाता हूं।

उस दिन मैं ट्रेन छूटने के बाद, चलते-चलते, जाने कब हावड़ा ब्रिज तक पहुंच गया। दूर तक कतार-दर-कतार नावों की झिलमिलाती हुई रोशनी और पार्कर स्याही की तरह गंगा का घना काला जल। अचानक तेज-तेज बहती हवा ने मेरे कानों में फुसफुसाकर गंगा को मत्था टेकने की याद दिलायी और साथ ही रूमा की मां का चेहरा मेरी आंखों के आगे तैर उठा।

अच्छा, रूमा की मां यानी कल्याणी मौसी उन लोगों के साथ दिल्ली क्यों नहीं गयीं? रूमा तो उनकी सगी बेटी थी। वह कैसे अपनी मां को छोड़कर दिल्ली चली गयी? अपने डैडी के साथ वह उतनी दूर चली तो गयी, लेकिन वहां क्या उसे अपनी मां की एक बार भी याद नहीं आयेगी?

उस दिन क्वालिटी में कॉफी पीते-पीते रूमा ने कहा था, "अच्छा, तुमने गौर नहीं किया, मेरी मां और डैडी की शक्ल-सूरत, चरित्र, रुचि, तौर-तरीके आदि में कैसा जमीन-आसमान का फर्क है?"

मैं खाली-खाली निगाहों से रूमा का चेहरा पढ़ने की कोशिश करता रहा।

मुझे याद है, रूमा अक्सर मुझे अपने कमरे में लगे हुए आदमकद आईने के सामने खड़ा करके, प्यार करने की जिद किया करती थी।

जब हम एक-दूसरे को चूम रहे होते, वह आवेग से भरकर कहती, "जानते हो, सूर्य, हमारी जोड़ी बहुत-बहुत सुंदर लगेगी। हम दोनों सूरत-शक्ल से जैसे एक-दूसरे के लिए ही बने हैं।"

लेकिन इतना हूबहू चेहरा होने पर भी क्या हुआ? आखिर तो रूमा मुझे बीच राह में फेंककर चली गयी।

दरअसल, रूमा का चेहरा अगर रत्ती-भर भी किसी से मेल खाता था, तो वह अपने डैडी नीतिश साहा से।

दोनों ही अजीबोगरीब इंसान थे। पुराने मॉडल की कोई भी चीज उन दोनों के नाक-तले नहीं चढ़ती थी।

शायद वो जीते-जागते इंसान को भी महज निर्जीव सामान भर ही समझते थे।

उस दिन हावड़ा ब्रिज से सीधे अपने घर नहीं लौटा था।

हैरिसन रोड की ट्राम पकड़कर कॉफी हाउस चला गया। सोचा था, दो-चार दोस्तों से मिलकर, थोड़ी देर बातचीत करने से शायद मन हल्का हो जायेगा और तबीयत भी थोड़ी बहल जायेगी। कॉफी हाउस में एक प्याली चाय का ऑर्डर देकर कोने की एक खाली मेज पर अकेला ही जा बैठा। मानो अपनी ही किस्मत से कोई शर्त बदकर बैठा था कि देखूं तो सही आज मेरी मेज तक कौन पहुंचता है।

और उस दिन अपनी किस्मत के जुए में मेरे हिस्से में आ पड़ा—सोने-चांदी का धंधा करने वाले का बेटा सलिल नंदी। वह अचानक अलादीन के चिराग वाले राक्षस की तरह प्रकट हुआ और मुझे कलकत्ते के उस आकाश-चुंबी फ्लैट में उड़ा ले गया।

अलका को मैंने वहीं पहली बार देखा था।

इस प्रसंग में सलिल नंदी का भी थोड़ा-बहुत परिचय दे दूं। हम दोनों ने स्काटिशचर्च कॉलेज के प्रथम वर्ष में साथ-साथ दाखिला लिया था। सिर से पांव तक 'को-एजूकेशन' के नशे में चूर होने के बावजूद, सारी की सारी लाज-हया अभी पूरी तरह नहीं छोड़ पाया था। इसी-

लिए ऊपर से लापरवाह दिखने पर भी मैं अंदर से कहीं बेहद कच्चा और शर्मीला था। उन्हीं दिनों बुद्धू-बुद्धू-सी सूरत-शक्लवाला भलेमानस टाइप का रईसजादा—सलिल नंदी अक्सर ही हमें उड़ा ले जाता था और वसंत के दिनों में कटलेट और चाय का नाश्ता कराता था। एक बार किसी छोकरी की मुहब्बत में दीवाना होकर हदुआ तालाब में आत्महत्या की कोशिश भी कर चुका था। उस हादसे के बाद ही उसके बाप-काका ने कॉलेज से उसका नाम कटा दिया और उसकी गरदन पकड़कर दूकानदारी के लिए बैठा दिया। वैसे वह कॉफी हाउस में रोज-रोज का ग्राहक नहीं था। कभी-कभार जाने कहां से अचानक उदय होता था और उसके उदय होते ही सभी के कान खड़े हो जाते थे कि उस दिन कोई न कोई अद्भुत कांड जरूर होगा। जहां तक मुझे याद पड़ता है, उस रात सलिल कॉफी हाउस में करीब छह-सात महीने बाद दिखा था। दरवाजे से अंदर कदम रखते ही वह सीधे मेरी टेबल पर चला आया और एक कुर्सी खींचते हुए दरियाफ्त किया, "क्यों रे सूर्य, क्या हालचाल है ?"

सलिल के बातचीत और हंसी के रुख से मैं अच्छी तरह भांप गया कि उस दिन उसका शिकार मैं हूं। आसपास की टेबुलों पर जितने जान-पहचान के लोग थे वे सब के सब दबी निगाहों से मेरी ही तरफ देख रहे थे। उसके होठों पर खिंची हुई मुस्कान मानो यह साफ जाहिर कर रही थी कि आज मेरी किस्मत का सितारा बुलंद है। आज सलिल सूर्य को 'खुल जा सिम्-सिम्' का जादू दिखायेगा।

मैंने सलिल की तरफ देखते हुए उलटकर सवाल किया, "तू बता, तेरा क्या हालचाल है ?"

सलिल ने अपनी जेब से एक चमचमाता हुआ सुनहला सिगरेट-केस निकाला और शान से एक सिगरेट जलाकर मेरी तरफ बढ़ाते हुए कहा, "मैं तो फर्स्ट क्लास हूं ! ले—"

मेरे दिमाग में जैसे दप्प् से आग जल उठी। उसे यह सिगरेट-केस निकालने की क्या जरूरत थी ? ठीक ऐसा ही एक सिगरेट-केस रूमा के पास भी था···। खैर, सलिल को क्या पता ? उसने अनजाने में ही मेरे

अंदर सोयी हुई यादों को जगा दिया था।

मैंने सिगरेट लेने से मना कर दिया और मुंह फेरकर रूखी आवाज में पूछा, "सलिल, आजकल तेरे बड़े चर्चे हैं। सुनता हूं, तू बिल्कुल ही आवारा हो गया है।"

सलिल ने अपने लिए कोल्ड कॉफी लाने का ऑर्डर दिया और मेरी जांघ पर धौल जमाते हुए कहा, "अबे, जा-जा ! तूने झूठ सुना है। दरअसल जो खुद नामर्द हैं, लड़कियों की तरह मिमियाते रहते हैं, वे ही ऐसी बातें करते हैं। आजकल मैं बड़े काम का आदमी हो गया हूं।"

मेरा हाथ अनायास ही गाल पर चला आया। मैंने पैर हिलाते हुए पूछा, "मतलब ?"

"मतलब यह कि मुझे असली खून का मजा आने लगा है।"

"मतलब ?"

"मतलब, मैं तुम लोगों के इस बार्ली-घुले कॉफी-हाउस के फालतू पिनपिनपने से चला आया हूं। और सूर्य, तुझे पता है—अब मैं बाकायदा नियमित रूप से दुकान पर बैठने लगा हूं। दुकान पर बैठे बिना अब मेरा खाना ही हजम नहीं होता। अब मैं भी कसौटी पर सोना घिसकर उसमें से मिलावट बाद देकर, सोने का असली परसेंटेज बता सकता हूं। सच्चे मोती, मूंगा, हीरा, चुन्नी, पन्ना भी परख सकता हूं। अब मैं वह गुर जान गया हूं कि ग्राहक मेरी दुकान में चिपके रहें। मैं उन्हें मजे में ठग भी सकता हूं। अरे सूर्य, लगता है तेरा भी राहू बिल्कुल वक्र है। एक दिन तू भी मेरी दुकान पर आ जाना। मैं तेरे लिए भी पांच रत्ती के गोमेद वाली एक अंगूठी बना दूंगा। ठीक है ?"

"मेरे राहू का सुराग तुझे कहां से मिल गया ? आजकल क्या तूने हाथ देखने का भी धंधा शुरू कर दिया है ?"

"नहीं ! तेरी सूरत जो देख रहा हूं। मानो स्याही घिर गयी हो।"

मैंने मिनमिनाती हुई आवाज में कहा, "चल, फालतू बकवास मत कर ! ले, कॉफी पी !"

सलिल ने कोल्ड कॉफी की एक चुस्की भरकर कहा, "धत्तेरे की ! एकदम बकवास ! आजकल भाई ऐसी निरामिष कॉफी से अपन राम का

काम नहीं चलता। न कोई स्वाद, न मजा ! खामख्वाह रात-भर जागते रहने की तकलीफ। इसके अलावा यह भूसा चीज और कोई भला नहीं करती। अवे, जिंदगी का असली मजा तो तुझे तब समझ में आता जब दो पैग खालिस व्हिस्की चढ़ाता। तुम लोगों की तरह हाथ में कॉफी दबाये 'हां जी—ना जी' करते हुए मुझे तो शर्म आती है। सीधी-सपाट छातियां, मुंहासे भरे गाल, नाक तक झुका हुआ चश्मा, कमर-टूटी 'द' फिगरवाली लड़कियों के पीछे-पीछे घूमना और सिर्फ 'रैम्बो' या 'बोदले-यर'···उफ ! काश, तू इन सबके बजाय किसी असली औरत का मजा जान पाता तो···"

मैंने हाथ झटककर कहा, "स्साले, जब तुम असली मजा पा ही गये हो तो फिर रह-रहकर इस नकली जगह में अचानक साक्षात् अशांति बनकर कहां से आ जाते हो ?"

सलिल ने कुर्सी की पीठ से सिर टिकाते हुए कहा, "बात दरअसल यह है कि तुम जैसे बूढे छोकरों को यूं धूल फांकते देखकर मुझे बहुत मजा आता है।"

मैंने उसी वक्त पहली बार गौर किया था, सलिल मानो बौनों के देश लिलिपुट में आ निकला हो और उनकी तरफ कौतूहल-भरी निगाहों से देखने वाला हीरो गलिवर हो। सलिल ने थोड़ी बड़ी उम्र में कॉलेज में दाखिला लिया था। लेकिन अब वह भरपूर मर्द लगता था। उसके चेहरे-मोहरे, सीने और कंधे पर उत्तेजना की अजीब-सी चमक थी, जिसकी वजह से वह जाने कैसा रियल-रियल जान पड़ता था। इतनी-सी उम्र में ही वह शेव भी करने लगा था। इसी वजह से हल्का-हल्का हरापन लिए हुए खुरदुरे गाल और अपनी भरी-पूरी सेहत की वजह से या अपने मजबूत सख्त जबड़ों वाले चेहरे की वजह से वह बेहद चरित्रवान होने का भ्रम देता था। मेरा मतलब है उसके चिबुक, होंठ, दांत और माथे पर जाने कैसा सख्त और ठोस पौरुष था। उसके चेहरे से यह साफ जाहिर होता था कि इस दुनिया में वह कुछेक चीजों का गहरा स्वाद पा चुका है।

शायद इसी कारण मैं और अधिक बौखला गया था।

मैंने क्षुब्ध होकर कहा, "देख सलिल, आज मैं भयंकर ऑफ मूड में हूं, तुझे अगर किसी मुर्गे की तलाश है, तो कोई और टेबुल देख।"

सलिल ने हाथ वढ़ाकर मेरी गर्दन पर धौल जमाते हुए कहा, "अच्छा, तेरा मूड ऑफ है ? अरे वाह ! मैं तो कोई तुझ-जैसा ही ऑफ मूडवाला मुवक्किल ढूंढ़ रहा था। चल, आज तेरे ऑफ मूड का इलाज करा लाऊं ! चल, जरा तुझे नशा-पानी का स्वाद चखा लाऊं !"

वह मुझे करीब-करीव खींच ले गया।

"आज मेरा भी मूड ऑफ है, यार ! अगले साल एक तेरह साल की निरी वच्ची से मेरा व्याह होने जा रहा है। तू ही कोई उपाय वता न ! मैंने तो काफी पंख फड़फड़ाकर देख लिया। कहीं कुछ नहीं मिलता। अतः फेमिली के नियम-कानून मानकर चलना ही वेहतर है, समझा ? बड़े बाजार में लड़की वालों की सर्राफे की चार-चार दूकानें हैं।"

मैंने भी विशेष आपत्ति नहीं की, चुपचाप सलिल के साथ चल दिया। असल में वहुत अधिक ना-नुच करना भी भला नहीं लगता। उस दिन कल्लोल बता रहा था कि वह उसे और शमीन को किसी कीमती बार में ले गया था और उनके पीछे तीन सौ रुपल्ली यूं ही खर्च कर डाले थे। सुखेन को लेकर रेस के मैदान में गया था। ग्रैंड-स्टैंड ऊंचे दामवाली जगह है, उसने उसे वहां से घुड़दौड़ दिखायी थी। कानू को वंवइया-फिल्मों जैसे मुहल्ले में ले गया था। आशिष को लेकर पुरी गया और उसे रेस्ट-हाउस वाले होटल में ले जाकर ठहराया था। मैं—सूर्य राय—उसी सलिल के खर्चे पर खा-पीकर मौज उड़ाऊं और उसके सामने यह दिखाऊं मानो उसी का उद्धार कर रहा हूं, इतनी वेशर्मी मेरे लिए संभव नहीं थी। इसके अलावा यही एक वढ़िया मौका है। आम-तौर पर वह एक बार जिसे जन्नत की सैर कराता है, उसे दूसरी बार कभी नहीं बुलाता। उसे हमेशा नये-नये ग्राहकों की तलाश रहती है !

अतः सलिल की सुनहरी स्टैंडर्ड हैराल्ड में वैठते हुए मुझे किसी जादुई कालीन पर चलने-जैसा आभास हो रहा था। मुझे लगा मैं किसी तिलस्मी कालीन पर बैठकर रातोंरात अरब के जादू देश की ओर उड़ा जा रहा हूं। सलिल ने गाड़ी घुमायी और मुझे लगभग उड़ाते हुए जाने

कब सेंट्रल एवेन्यू पहुंच गया, पता ही नहीं चला।

मैं भीड़ को चीरते हुए आगे बढ़ता जा रहा था। अचानक एक ट्रैफिक सिगनल के इशारे पर रुक जाना पड़ा। उसने मेरी तरफ घूमकर पूछा, "हांऽ, तो अब बता, मूड इतना ऑफ क्यों है ?"

जरा मूड में आकर मैंने उसके सिगरेट केस से एक फिल्टर-टिप्ड सिगरेट सुलगाकर धुआं छोड़ते हुए कहा, "आज मेरी एक पार्टी कलकत्ते से फुर्र हो गयी, सलिल !"

"कहां ?"

"दिल्ली !"

सलिल ने सिर झटककर जोर का ठहाका लगाया, "बस ! अबे, दिल्ली ही न ? यानी इस मुहल्ले से उस मुहल्ले में ! मैंने तो सोचा था शायद चांद के सफर पर चली गयी !"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। असल में जवाब देने लायक कुछ था भी नहीं। मेरे लिए रूमा का जाना मानो कोई खेल था जो अचानक अभी-अभी जमने लग गया था। उसका जाना निहायत भोंडे और अधकचरे तरीके से मेरी नस-नस में चुभन दे रहा था।

सलिल लगभग फुसफुसाते हुए अपनी आपबीती बयान करने लगा, "इसी तरह अपने साथ भी एक क़िस्सा हुआ था। मेरे मुहल्ले की एक रईसजादी एक रईसजादे के इश्क में गिरफ्तार हो गयी। मां-बाप ने जब सुना तो उसे सीधे विलायत भेज दिया। ख़ैर साहब, दो साल बाद जब वह लौटी तो उसे खबर मिली कि वह लड़का इन दिनों बंबई में नौकरी कर रहा है। बस, वह उड़कर बंबई पहुंच गयी और उसी रात उससे बाक़ायदा ब्याह रचा लिया। सो, यार सूर्य, जो सच होता है, वह हमेशा अपनी जगह ठीक-ठाक यानी टिका रहता है, वह कभी नहीं मिटता, दूर हो या पास, विरह या मिलन, किसी भी स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता। जैसे-जैसे समय गुजरता जाएगा न, तेरा भी अनुभव पकता जाएगा, समझा ? अभी किस्मत में दुख बदा है, सो सहे जा।"

उस दिन सलिल की बात मेरी समझ में नहीं आयी थी। मैं उसके दार्शनिक वाक्यों की गहराई में नहीं उतर पाया। लेकिन अब इतने दिनों

बाद, मैं उसका मतलब अच्छी तरह समझ चुका हूं। मैं—छब्बीस वर्ष का सूर्य राय। भारी-भरकम भाषा में जिसे कहते हैं अध्यापन—कॉलेज में अध्यापन का काम समाप्त करके मैं अभी-अभी लौटा हूं और गरिया में बने हुए अपने बंगलानुमा मकान में बैठा-बैठा, फागुन की ऐसी रंगीन शाम के वक्त चाय की चुस्कियां लेता हुआ, अपने हरे मखमली लॉन और मौसमी फूलों से सजे-संवरे बगीचे को निहार रहा हूं और मन-ही-मन राहत महसूस कर रहा हूं—पिछले जमाने की बातें याद करते हुए मन-ही-मन हिसाब लगाता हुआ। सलिल मुझसे तकरीबन दो-तीन साल बड़ा रहा होगा। लेकिन उसने कितनी सच्ची बात कही थी!

उस दिन सलिल के साथ-साथ चलते हुए मैंने माहौल को हल्का बनाने की गरज से पूछा, "तो स्साले, आज कहां खेंप मार रहे हो?"

"वंडरफुल जगह ले चलूंगा यार! अद्भुत माल है। कलकत्ते में अभी हाल में ही शुरू हुआ है! अबे, देखेगा तो पगला जायेगा!"

उस वक्त उसकी गाड़ी पार्क-स्ट्रीट से होकर गुजर रही थी। उस रास्ते का नाम जाने क्या प्लेस था! भयंकर निर्जन! आसपास अंग्रेजों के जमाने के बड़े-बड़े कम्पाउंड वाले मकान। बीच-बीच में अल्ट्रा-मॉडर्न मल्टी स्टोरीड दरबे।

गाड़ी ने एक झटके से शार्प टर्न लिया और किसी भयंकर निर्जन रास्ते पर पार्क से लगी हुई आकाश-चूमती एक इमारत के बेसमेंट में दाखिल हुई।

सलिल ने गाड़ी बंद करते हुए कहा, "चल, अब हम बिल्कुल नाक की सीध से एकदम टॉप फ्लोर पर जायेंगे।"

लिफ्ट की स्ट्रीप में मंजिलों के जलते-बुझते नंबर पढ़ते-पढ़ते अचानक सलिल से यह पूछने का मन हुआ कि आखिर हम लोग जा कहां रहे हैं। लेकिन फिर कुछ न पूछना ही बेहतर लगा। बारहवीं मंजिल पर उतरकर सलिल ने किसी एपार्टमेंट की घंटी बजा दी। बॉबी ने यूं तपाक से दरवाजा खोला मानो हमारे स्वागत के लिए बिल्कुल तैयार खड़ा था। उसके साथ कमरे में आते-आते सलिल स्लेटी रंग के एक लंबे-चौड़े पांवपोश पर कदम रखकर अचानक ठिठक गया। उसने

INSTITUT OF ADVANCED
Acc. No. 94322

बॉबी से मेरा परिचय कराते हुए कहा, "बॉबी, सूर्य से मिलो ! मेरा दोस्त ! और सूर्य ये है—बॉबी राय !"

उसने किसी विदेशी विज्ञापन कंपनी का नाम लेते हुए बताया कि बॉबी कंपनी में एक ऊंचा अफसर है। उसके बाद वह भीड़ में धंसी हुई एक तितली को भी खींच लाया, "और यह है—मिनी राय। बॉबी की बीवी। एक बुटिक चलाती है। इनके बच्चे की आज पहली सालगिरह है।"

मैं उसी वक्त शर्म से गड़ गया। जिसे कहते हैं मध्यवित्त मनोवृत्ति। उनके बच्चे के लिए मैं तो कोई प्रेजेंट भी नहीं लाया था। अब उस बच्चे को आखिर क्या दूंगा ? वाकई सलिल ने मुझे काफी शर्मनाक स्थिति में डाल दिया था।

मैं दबी आवाज से सलिल को डांटने लगा।

उसने छूटते ही कहा, "अरे, छोड़ ! छोड़ ! यह उस तरह की कोई सामाजिक या औपचारिक पार्टी नहीं है। अरे, यह तो मिलने-मिलाने का एक बहाना-भर है। ऐसी जगहों में लोग उपहार वगैरह के बारे में सिर नहीं खपाते।"

इसी बीच दो अलग-अलग छोरों से अचानक बॉबी और मिनी फिर प्रकट हो गए और हमें अलग-अलग खींच ले गए। गैलरी पार करते ही एक बड़ा-सा हॉल कमरा। हल्के सफेद रंग का कोमल-नरम विदेशी कालीन। ऐसा लग रहा था मानो किसी ने मेमने का मुलायम चमड़ा सीकर बिछा दिया हो। सोफा, पियानो, बुफे, रैक्स, तरह-तरह के क्युरिओ भरे शो-केस वगैरह हटाकर, कमरे के किनारे पर रख दिये गये थे। शायद यह कमरा डाइनिंग-कम-ड्राइंगरूम की तरह इस्तेमाल किया जाता था। डाइनिंग कुर्सियां बीच से हटाकर दीवारों के पास लगा दी गयी थीं। साइडबोर्ड में कांच के कीमती डिनर-सेट ढेरियों में सजे हुए थे। कमरे की छत से रोशनी का लटकता हुआ झाड़। डाइनिंग-कम-ड्राइंगरूम इस वक्त एक बड़ा हॉल-कमरा नजर आ रहा था। मेरी विस्फारित आंखें अपरिचित वेश-भूषावाले नौजवान मर्द-औरतों के अपरिचित चेहरों की भीड़ में भटक रही थीं। अच्छा, ये सब के सब

लोग क्या इसी कलकत्ता शहर में रहते हैं ? आखिर किन मकानों में रहते हैं ? मैं तो लगभग सारे कलकत्ते का चक्कर लगाया करता था, लेकिन उनमें से कोई भी चेहरा जाना-पहचाना नहीं लग रहा था।

बॉबी ने जालीदार सिंथेटिक की कमीज पहन रखी थी। ऊपर से स्वेड की ढीली-ढाली फतुही और नीचे काउब्वाय बेल-बॉटम ! वह अपने अस्त-व्यस्त बालों की लहरियों में अंगुली फेरता हुआ बार-बार उन्हें झटक कर पीछे कर देता था। मिनी ने बदन से चिपका हुआ बैंजनी रंग के नॉयलन का एक जालीदार सूट पहन रखा था। कमर में पतली रस्सीनुमा चौड़ी सफेद पेटी जिसे सरकाते-सरकाते नीचे ले आया गया था कि उसकी नाभि साफ झलक रही थी। वहीं सुनहले रंग का चमचमाता हुआ बकलस। पैरों में ऊंची एड़ी वाले स्लीपर। मिनी के बाल भी अपने पति से अधिक लंबे नहीं थे। वे दोनों इतने अलमस्त और बच्चे-बच्चे लग रहे थे कि मुझे यह सोचते हुए भी अजीब लग रहा था कि वे विवाहित हैं या एक बच्चे के मां-बाप हो चुके हैं। इन्हीं दोनों में से एक व्यक्ति दफ्तर चलाता था, दूसरा बुटिक।

कमरे के बाकी लोगों की हुलिया भी कमोवेश उनकी ही तरह की थी। मेरी तरह गंवई या अधकटे बाल और शर्ट-पेंट वाला एक भी लड़का नहीं था। मैंने गौर किया, सलिल ने भी काफी फैशनेबल सूट पहन रखा था। हमारे कॉफी हाउस के छोकरे इस तरह की पोशाकों पर फौरन फिकरे कसते थे, "अरे, बाप रे···! फप्स ! डैडीमार !" कमरे में घुसते हुए मैं सलिल से चिपका हुआ था, जैसे लिफाफे से डाक-टिकट। हालांकि वह मुझे बार-बार समझाता रहा कि मैं दूसरी तरफ जाकर और लोगों से भी मेल-मुलाकात करने की कोशिश करूं। लेकिन आखिर मैं किससे और क्या बातें करता ?

सलिल तो ऐसा पाजी निकला कि पहले ही हमले में एक हिंदुस्तानी छोकरी को पटा-पटूकर, उसे लिए हुए कमरे के एक अंधेरे कोने में जा बैठा। मैं एक मोढ़े पर बैठा-बैठा मौन दर्शक की तरह चारों तरफ डबर-डबर देखता रहा। मिनी लोगों के यहां वर्दीधारी बैरे थे, जो ट्रे में काजू, बादाम, व्हिस्की की बोतल और कटग्लास के छोटे-छोटे व्हिस्की-ग्लास

लिये इधर-उधर घूम रहे थे। मूढ़े पर टेक लगाना संभव नहीं था, अतः मैं बेहद असुविधाजनक स्थिति में बैठा था। मेरे पैरों के बिल्कुल पास ही, कालीन पर एक नरम तकिये में कोहनी गड़ाये एक मर्द और औरत बातचीत में मशगूल थे। लड़की घुटने मोड़कर गाल पर हाथ रखे बड़ी तन्मयता से लड़के की बातें सुन रही थी। उनके सामने एक जोड़ी ग्लास भी एक-दूसरे से सटे-सटे पड़े हुए थे। लड़की का एक हाथ लड़के की जांघों पर था। लग रहा था दोनों जैसे एक-दूसरे के लिए बने हों। मैं दत्तचित्त होकर उन दोनों के हाव-भाव देखने लगा। लड़के के बाल घुंघराले और बादामी रंग के थे। आंखें जरा तिरछी और गहरी गुलाबी ! बदन पर काली सिल्क या नायलन की गंजी और एलिफेंट कटवाली काली पेंट ! लड़की ने अपने लंबे बालों को सपाट काढ़कर बीच से पतली मांग निकाली थी। उसका लंबा चेहरा बालों की झालर में लगभग छिप-सा गया था। निविड़-रेखा की तरह खिंची हुई भौंहें ! पलकों पर खिंची हुई मोटी-सी एक काली पर्त। होंठों पर दूधिया रंग की लिपस्टिक। झोला-बाबा के लबादा किस्म के कपड़े पहन रखे थे। गले पर कटाव इतना गहरा था कि अंदर से उभरा हुआ वक्ष बिल्कुल साफ दिखाई दे रहा था। उसने अंदर ब्रेजियर भी नहीं पहनी थी। वे लोग अंग्रेजी में बातचीत कर रहे थे। हालांकि यह मुझे बाद में पता चला था कि दोनों मुसलमान हैं, उनमें से एक उर्दू-भाषी था। और दूसरा अंग्रेजी के अलावा शायद और कुछ नहीं समझता था।

"हां, तो तुम अब क्या करोगी शमीम ? बांग्ला देश ही वापस जाओगी ?"

लड़की ने भौंहें सिकोड़कर उस लड़के की तरफ एक बार सिर से पैर तक देखा और कहा, "न्ना।"

मैंने गौर किया—उसके चेहरे पर बिजली के कांच की तरह क्रमशः खुशी और रंज की छायाएं घुल-मिलकर एकाकार हो उठीं। उसने मानो अपने को ही भुलावा देते हुए अजीब-सी आवाज में कहा, "तुम्हें पता है, रेहाना ? इस कलकत्ता शहर में हजारों तरह के मौज-मजे की चीजें हैं। वाकई इस कलकत्ते ने पागल कर दिया है। तुम्हीं बताओ, कलकत्ता

खींचता है न ?"

वह लड़की उसे बेहद अजीब निगाहों से देखती रही, मानो दीवार भेदकर उसकी दृष्टि कहीं दूर भटकती रही।

"लेकिन मेरे पास कलकत्ते में रहने लायक़ जो पूंजी थी, सब ख़ल्लास हो चुकी है, शमीम। इस मॉडलिंग के धंधे में भी कोई खास आमदनी नहीं है। अब काम भी बहुत नहीं मिलता। सो, मुमकिन है कि अगले हफ्ते ही मैं बंबई चल दूं!"

"कब जा रही हो ?"

लड़के ने बेहद निरासक्त और ठंडी आवाज में पूछा। मानो पूछने के लिए पूछ रहा हो। उसकी आवाज में अतिरिक्त उत्ताप का लेशमात्र भी नहीं था।

लड़की ने ह्विस्की का एक सिप लेते हुए जवाब दिया, "जाने भर का किराया जुगाड़ होते ही मैं चल दूंगी। तुम जानते हो, कलकत्ते के होटल कितने महंगे हैं। इन दिनों एक घटिया होटल में रह रही हूं। सर्विस बिल्कुल बकवास। आधे वक्त तो टेलीफोन भी बेकार। हर रोज छप्पन रुपये किराया। मेरे तो सारे जेवर ख़ल्लास हो गये। अब तो कपड़ों की बारी है!"

"बॉबी क्या कहता है ? वह तुम्हें कोई कामकाज नहीं दे सकता ?"

"नहीं!"

रेहाना नामक औरत ने बैठने का अपना पोज बदल लिया। उसकी आंखों की फीकी-हरी पुतलियां मानो भटकी हुई नाव की तरह इधर-उधर डोलने लगीं।

वह लड़का उठकर बैठ गया। मैंने अंदाज लगाया कि उसने अपनी जेब में हाथ डाला है। मुझे लगा, अगर वह उस तरह अद्‌भुत तरीके से उठकर न बैठता और उतनी कसी हुई पैंट न पहने होता तो उसका जेब में हाथ डालना शायद अकारथ होता। उसकी जेब से कागज-पत्र, बोतल खोलने वाली चाबी और पाकिस्तानी और भारतीय नोटों की गड्डियों के अलावा एक छोटा-सा रिवाल्वर भी निकल आया। उसने उसमें से करीब पांच-सौ रुपये गिनकर उस लड़की को थमा दिये।

लड़की ने भी निर्विकार भाव से व्हिस्की का सिप लेते हुए रुपये अपने बैग में ठूंस लिए। उसके बाद वे दोनों फिर पहले की तरह सिनेमा, मॉड-फैशन, राजनीति आदि की चर्चा में मशगूल हो गये। मैंने भांप लिया कि उनमें किसी तरह का पारिवारिक या व्यक्तिगत परिचय नहीं था।

गजब है! उनमें से एक का हाथ दूसरे के हाथों में गुंथा हुआ, दूसरे की जांघ पहले की पसलियों से सटी हुई, लेकिन दोनों के चेहरों पर मानो मोम की पर्त जैसी निर्लिप्तता झलक रही थी। मानो वे बेहद, खूबसूरत होने के बावजूद बिल्कुल बेजान भयंकर यंत्रचालित मशीनें हों।

मैंने नजरें हटा लीं। अगर मैं यह कहूं कि नजरों के बजाय मैंने अपने कान हटा लिए तो शायद अधिक सच होगा।

एक छोटा-सा गिरोह अजीब मजेदार खेल में मशगूल था। पॉप गीतों के अंतिम अक्षर से किसी नये गाने की शुरुआत। उनके चेहरों पर अजीब-सी चमक थी। कोई सोफे के हत्थे पर, कोई जमीन पर। सब एक-दूसरे की देह की गरमाहट और सिहरन सहते हुए गोलाकार रूप में खेल रहे थे। एक-दूसरे की जांघ या पीठ पर धौल जमाते हुए लोग। बीच-बीच में शराब के सिप और काजू-बादाम के लिए बढ़े हुए हाथ।

उन्हीं लोगों के बीच से अचानक वह उठकर खड़ी हो गयी थी। गीत की अंतिम कड़ी से किसी नये गीत की शुरुआत का खेल तोड़कर उसने एक समूचा गीत गाया। सारा कमरा अद्भुत रुपहली घंटियों की आवाज से टुनटुना उठा था। आपसी फुसफुसाहटें, व्यक्तिगत प्यार, आवेश जैसे थम गये थे और सब की आंखें घूमकर एकबारगी अलका के चेहरे पर स्थिर हो गयी थीं।

अचानक अलका धीरे-धीरे सब से ऊपर उठती जा रही थी—मानो वह कोई श्वेत-शुभ्र फूल या मुट्ठी-भर धुंध या नॉयलन का कंदील बन गयी हो।

उसने दूधिया स्लैक्स और कलीदार चिकन का कुर्ता पहन रखा था।

उसके गले में तांवे की एक चेन पड़ी थी, जिसमें तांडव-नृत्य की मुद्रा में नटराज का बड़ा-सा लॉकेट झूल रहा था। उसके हाथ में सेराफिक की नक्काशीवाला सफेद रंग का एक फूलदार वीयर-जग था।

मैंने कभी वचपन में समुद्र से प्रकट होती हुई मत्स्य-कन्या की तस्वीर देखी थी। अलका मानो उस स्मृति को फिर से लौटा लायी हो।

आम हिंदी फिल्मों में दिखाये जाने वाले दृश्य की तरह मेरे हाथ में भी एक खूबसूरत-सा वीयर-जग था। हालांकि उससे भी रंगीन पानी ही था। लेकिन मुझे उस वेहद तेज और आग फूंक देने वाली शराव से तारपीन के तेल की गंध आ रही थी, फिर भी मैं चढ़ाए जा रहा था और बीच-बीच में मुंह का कसैला स्वाद मिटाने के लिए मुट्ठी-मुट्ठी भर नमकीन काजू-वादाम चबाए जा रहा था। मैंने महसूस किया, पार्टी का हल्का-फुल्का माहौल अब जाने कैसा उदास और चुप होता जा रहा था। अचानक मेरी दृष्टि दूर खड़े सलिल पर जा पड़ी। मिनी स्कर्ट वाली लड़की के झउआ जैसे वालों से अपना गाल घिसते-घिसते अचानक वह भी ठिठक गया था ! वह भी कहीं से पत्थर की तरह जम गया। उसकी भी मुग्ध दृष्टि अलका के चेहरे पर जड़ हो गयी थी।

अचानक मिनी ने ही सारा जादू तोड़ते हुए वनमोरनी की तरह पंख फड़फड़ाकर कहा, "एई···लोका ! ऐसे गीत मत गा। देख नहीं रही पार्टी की लाइफ मरती जा रही है।"

हाथ में बीयर का मग लेते हुए मिनी जमीन पर नहीं मानो हवा में उड़ती हुई बॉबी के पास आयी और उसके कान में फुसफुसाकर कुछ कहा। बॉबी ने झटपट रेकॉर्ड-प्लेयर ऑन कर दिया और हाथ उठा-उठाकर सबको बुलाने लगा, "लेट्स डांस ! डांस !"

और सब उठ पड़े। दल टूट गया, जोड़ियां बदल गयीं और उद्दाम नृत्य शुरू हो गया। नाच के दौरान ही बैरे टेवुल पर से वोतल, ग्लास, काजू-बादाम, चिप्स हटाकर तंदूरी चिकन और नॉन-रोटियां सजाकर चले गये।

मैं विस्मित आंखों से देख रहा था, देह कैसे लहर वन जाती है। मुझे यह पहली बार अहसास हुआ कि चेहरे, छाती, नितंब और यौन-

अंगों के अलावा कमर, नंगी बांहें, गर्दन, कंधे वगैरह भी मन में प्यास जगा जाते हैं।

नाच-गान का सारा दौर जब अपनी चरम स्थिति पर पहुंच गया, तो मिनी के इशारे पर, बैरे खाने की प्लेटें हटा ले गये। कमरे की बत्तियां उस अंधेरे में एक-एक करके बुझती चली जा रही थीं, केवल नीले, हल्के लाल रंगवाले जीरो-पावर के एकाध बल्ब जल रहे थे। उस अद्भुत उद्भासित रंगीन अंधेरे में मैं देख रहा था—मिनी के हाथ आहिस्ता से अपनी कमर पर गये और उसने अपनी गाढ़े बैंजनी ड्रेस पर बंधी हुई सुनहले बकसुए वाली सफेद पेटी खोल डाली।

मेरे हाथ-पैर दहशत से कांपने लगे। मिनी और बॉबी के इस अपार्टमेंट में कदम रखने के फौरन बाद से ही मेरी आंखें नयी-नयी अकल्पनीय घटनाएं देख रही थीं। मैं कोई दुधमुंहा बालक नहीं था। उन्नीस साल का भरपूर मर्द। मैं समझ चुका था कि अब क्या होने जा रहा है और इतना सब कुछ सह जाना मेरी बरदाश्त के बाहर था। जब मेरा अंग-प्रत्यंग पोर-पोर आवेग से थरथरा उठा, उस वक्त कमरे की बाकी बत्तियां भी गुल कर दी गयीं और पूरे हॉल में अंधेरा लहरा उठा।

उस लहराते हुए अंधेरे में अचानक अजीब-अजीब आवाजें सुनाई दे रही थीं। शब्दों से भी अधिक उत्तेजक खुसफुसाहटों का सिलसिला। कपड़ों की सरसराहटें, टुकड़े-टुकड़े हंसी, फुसफुसाहटें, लंबी-लंबी उसांसें। मेरे चारों तरफ उठते-टकराते और गूंजते हुए शब्दों का बीहड़ जंगल फैल गया था और मैं उसमें से निकल नहीं पा रहा था। मैं किसी अजीब जादुई चमत्कारों के जंगल में गुम होता जा रहा था।

मैं शराब का गिलास रखकर, अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ। पानी में डूबते-उतराते इन्सान की तरह, उस दमघोंटू माहौल से किसी तरह भाग खड़ा हुआ। डूबते समय तिनके का सहारा खोजते हुए अंधेरे में टकराते-धकेलते, ढंकी हुई और नंगी देहों के मांसल समुद्र में तैरते-तैरते अचानक किसी अंधेरी सुरंग की गुहा-द्वार सरीखी एक जगह पर नजर पड़ी, जहां धुंधली-सी रोशनी जल रही थी। यानी इस विशाल हॉल-

कमरे में एक दरवाजा भी था। उस दरवाजे से शायद किसी बरामदे में पहुंचा जा सकता है। मैं कमरे की भीड़ को चीरता हुआ, किसी तरह वहां जा पहुंचा और जी खोलकर राहत की सांस ली।

कमरे का अंधेरा जैसे और तेज-तेज बज उठा था, मानो कयामत आ गयी हो। उस अंधेरे की आवाजों को प्रागैतिहासिक समय की तरह फेंककर मैं बरामदे की रेलिंग पर हाथ रखे एकबारगी रो पड़ा।

ऊपर की मंजिल से दिखता हुआ, मुट्ठी-मुट्ठी भर छितरे हुए सितारों के नीचे बिछा हुआ कलकत्ता उस रात मेरे दुख को बूंद-भर भी कम नहीं कर पाया।

थोड़ी देर बाद आंसू सूख गए। विस्मय-विस्फारित आंखों से देखने लगा। इससे पहले रात की बांहों में कलकत्ते की रंगीनी इतनी ऊंचाई से नहीं देखी थी। ऐसा खुला-खुला पचहत्तर मिलीमीटर फैला हुआ आकाश! आधी रात का नीलाकाश! आकाश की छाती में नोक-से गड़े हुए शहर के शरारती स्काइ-स्क्रेपर और चींटी के सूराखों की तरह नन्हे-नन्हे घर! लाल रक्त-बिंदु और नीले-हरे मुकुट की तरह जलती हुई रोशनियां! सुदूर पार्क-स्ट्रीट और चौरंगी में लगे हुए बड़े-बड़े विज्ञापनों का नियोन-साइन आकार-प्रकार। कलकत्ता-मेट्रोपोलिस!

मुझे याद है, एक बार मैंने बापू से ही मैट्रोपोलिस का मतलब पूछा था। बापू ने मुझे उसका शाब्दिक अर्थ बता दिया था। लेकिन उस दिन मैं इस शब्द की विराटता को पकड़ नहीं पाया था। आज मैं समझा था—महानगर कितनी विशाल चेतना, भयंकर तीव्र-बोध का नाम है। मेरा सिर चकराने लगा।

ठीक उसी समय मेरी बगल में वह लड़की डगमगाते हुए आकर खड़ी हो गयी थी। हां, बहुत साल बाद मुझे पता चला था कि उसका नाम अलका है।

अलका ने भर्रायी हुई लड़खड़ाती आवाज में पूछा, "डू यू नो आइ हैव लॉस्ट माइ नटराज? मेरा नटराज खो गया।"

मैं चांदी की घंटियों जैसी उसकी अद्भुत आवाज सिर्फ सुन रहा था। अपनी दूधिया कमीज पर हाथ रखकर अलका बता रही थी।

उसकी उंगलियों में तांवे की सिर्फ एक चेन लिपटी हुई थी। सच ही, उसमें भारी-भरकम नटराज की मूर्ति नहीं झूल रही थी। अलका की आंखें छलछला आयीं। तारों की धुंधली रोशनी में मैं उसे देख रहा था।

अलका सिर हिला-हिलाकर कह रही थी, "इट्स ए बैड ओमेन ! अशुभ लक्षण है ! अमंगल होगा ! भयंकर अमंगल !"

वह वरामदे में खड़े-खड़े चुपचाप जाने क्या-क्या सोचे जा रही थी। मानो वह अकेले ही कहीं दूर घूमने निकल गयी हो। उसके बाद अचानक उसने अपने सिर को झटका दिया और मेरी तरफ मुड़कर पूछा, "पहली बार आए हो ?"

मैंने सिर हिलाकर सहमति जतायी।

अलका ने लगभग सिसकियां भरते हुए कहा, "यकीन मानो, मेरा भी आज—नहीं, ऐसा माहौल मेरे लिए अपरिचित नहीं, लेकिन मैं भी पहली बार यूं अकेली···।"

अलका की आवाज बीच में ही टूट गयी थी, "यकीन मानो, मैं बिल्कुल नहीं आना चाहती थी। मुझे जबरदस्ती भेजा गया।"

मैं अवाक् होकर उसके चेहरे की तरफ देखता रहा। अलका का सिर बेहद लाचार मुद्रा में सीने पर झूल आया था, मानो किसी फ्रेम में कस दिया गया हो।

मैंने कहा, "आ···आप आयीं क्यों ?"

अलका ने कहा, "मैं अपने-आप नहीं आयी, बिजनेस पटाने के लिए मुझे यहां भेजा गया था।"

मैंने दुबारा पूछा, "कैसा बिजनेस ?"

"बिजनेस वालों का ! खैर, छोड़ो ये बातें, आप तो बेहद नर्वस हो रहे हैं ! आपकी उम्र कितनी है ?"

'उन्नीस।"

"मैं भी उन्नीस की हूं। उफ ! सुकांत भट्टाचार्य की वह कविता है न ? मन हो रहा है उसके कुछ शब्द बदलकर कहूं। उन्नीस साल की उम्र सचमुच कैसी कठिन। तुम्हारा कोई मन नहीं हो रहा ?"

मैं चकित होकर अलका का कदम-दर-कदम आगे बढ़ते हुए, अपने तक पहुंचने का हौसला देख रहा था।

"चलो अपन चलें। तुम्हें यहां अच्छा नहीं लग रहा है। मेरा भी मन नहीं लग रहा है। चलो, फूट लें यहां से।"

अलका ने एक कदम और आगे बढ़कर मेरा हाथ पकड़ लिया। मैंने हिचकिचाते हुए कहा, "लेकिन···मैं तो अपने एक दोस्त के साथ आया था यहां।"

"धत्तेरे की, दोस्त-फोस्त की याद बकवास है, इन सब पार्टियों में ऐसा कोई नियम-कानून नहीं है। जिसके साथ मन हो, आओ, जितनी देर मन करे रहो, जब, जिसके साथ मन हो चल दो।—समझे ?"

"·········"

"एई, सुनो···"

अलका ने मेरा हाथ पकड़कर खींचा। वह लड़खड़ा रही थी। मेरा हाथ थामकर, उस जीवंत सांस के दरिया में से होकर गुजरते हुए, उसने दबे हुए स्वर में सवाल किया, "चलोगे ? मेरे फ्लैट में चलोगे ? आज से मेरा एक नया फ्लैट है। पूरी तरह सुसज्जित। अब मुझे पैदल-पैदल घिसटते हुए अपने उस टेंगरा वाले मकान में, अपने 'परिवार वालों' के पास नहीं लौटना होगा। मेरे पास डनलपपिलो का बिस्तर है। उस पर सोते ही बेभाव सपने। बेभाव नींद। अगर शुरू ही करना है तो पचास साल वाले के साथ क्यों ? उन्नीस साल वाले के साथ ही शुरू हो—"

मैं अवाक् होकर सिर्फ इतना ही कह पाया, "क्या सब उल्टा-पलटा बक रही हो ?"

अलका ने मानो अपने को सुनाते हुए कहा, "आइ हैव लॉस्ट माइ नटराज, एंड दैट्स बैड। मेरा नटराज खो गया है, यह अपशकुन है··· आज मेरी जिंदगी में जरूर कोई हादसा होने वाला है। निश्चित रूप से घटेगा। मैं चाहती हूं, तुम ही ला दो वह घटना, मेरे जीवन में। जो घटनेवाला है तुम्हारे ही माध्यम से घटे। लेकिन तुम···तुम इतने निष्पाप लगते हो कि···"

अलका का हाथ पकड़े-पकड़े मैं किचन और पेंट्री से होता हुआ एक

खिड़कीनुमा दरवाजे से बाहर एक लंबे बरामदे में होता हुआ निकल आया। ऑटोमैटिक लिफ्ट में सटे-सटे बदन की टकराहट की वजह से या शराब के नशे की वजह से मेरे मन में किसी गुनाह की तीखी चाह जाग उठी। मुमकिन है, नशे का महज बहाना-भर हो। मुझे लग रहा था कि किसी अनंत यौवना 'प्रसार मिनट' के साथ किसी अथाह गहराई में उतरता जा रहा हूं। लेकिन लिफ्ट के जमीन छूते ही जैसे मुझे होश आ गया। अलका के साथ चलता हुआ मैं गाड़ियों की कतार के पास पहुंचा। सलिल मुझसे पहले ही फूट चुका था। उसकी सुनहली स्टैंडर्ड हैरॉल्ड वहां नहीं थी।

अलका को देखते ही एक लंबी-सी गाड़ी उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। दरवाजा भी खुल गया। अलका ने कहा, "आओ! आओगे नहीं ?"

मैंने सिर हिलाया। दरअसल उसके मॉड कपड़े, विदेशी गाड़ी, असाधारण स्वर, शुद्ध अंग्रेजी उच्चारण—कुल मिलाकर मुझे उससे भयंकर ईर्ष्या हो आयी।

अलका ने गर्दन घुमाकर कहा, "आओ न! मैं तुम्हें सिर्फ ड्रॉप कर दूंगी।"

मेरी सारी देह भयंकर क्रोध से झनझना उठी। अचानक मैं टिपिकल पूर्वी बंगाल मार्का डायलॉग बोल गया, "आपकी इत्ती बड़ी गाड़ी क्या उतनी दूर जा सकेगी ? मैं रहता हूं—श्याम बाजार की शशि सरकार लेन में! मैं बस से ही निकल जाऊं तो सुविधा होगी!"

अपनी बातों से अलका को अवाक् करता हुआ, मैं अपने दोनों हाथ पैंट की जेब में ठूंसकर किसी मस्तान की तरह, उस विशाल स्काइ-स्क्रेपर के गेट की तरफ चल दिया। उसके बाद बस में बैठकर बहुबाजार, हाथी बगान होता हुआ, अपने स्टॉप पर उतरा और अपने मकान की गली में निकल आया। अचानक घर में बिजली के नंगे बल्ब के प्रकाश में रस्सी पर लाइन से लटकती हुई कथरियों पर नजर पड़ी और एक-एक याद आया—अरे, बॉबी और मिनी के बच्चों को तो देखा ही नहीं!

अचानक मन में अजीब-सी दुविधा जाग उठी। अच्छा, आज शाम कॉफी-हाउस में पहुंचने के बाद से ही जो घटनाएं घटती चली गयीं, वे सब ठीक-ठीक उसी तरह ही घटी थीं न ?

क्या सच ही कलकत्ते शहर में किसी बॉबी-मिनी लोगों का बारह मंजिले पर कोई अपार्टमेंट है ? इस दुनिया से काफी ऊपर, शशि सरकार लेन से काफी दूर, ऊंचाई पर, मेरी पहुंच से दूर ऐसी कोई अद्‌भुत जगह है ? सज्जिल नंदी क्या सचमुच कॉफी हाउस में आया था ? सच ही क्या आज मैंने पहली बार शराब का स्वाद चखा है ? मैंने इतने करीब से सचमुच ही कोई रिवाल्वर देखा था ?

उस लड़की की रुपहली घंटियों जैसी आवाज, छाती के उभारों के बीच लटकता हुआ नटराज का विशाल लॉकेट--मेरे ख्यालों में चक्कर काटने लगा। मेरे दिमाग में पचहत्तर मिलीमीटर से दिखता हुआ कलकत्ता घूम रहा था और अचानक मेरे पैर कलकत्ता कारपोरेशन के वीभत्स खड्डोंवाली शशि सरकार की गली से टकरा गये थे। मेरे इर्द-गिर्द गली की अजीब-सी गंध थी और गली के परले सिरे पर उसकी प्रतिछवि की तरह माथे की सलवटों-सा कटा-फटा धुंधला आकाश।

धीरे-धीरे मैंने कबूतर के दरबेनुमा फ्लैट में कदम रखा। नीचे से ऊपर के फ्लैट की तरफ नजर पड़ी। रूमा लोगों का फ्लैट अंधेरे में डूबा हुआ था। मौसी क्या सो गयीं ? या उस खाली फ्लैट में भूतों की तरह अकेले-अकेले चक्कर काट रही हैं ?

वे तो स्टेशन भी नहीं गयीं। रूमा या रूमा के डैडी ने भी खास जोर नहीं डाला। स्टेशन पर रूमा के डैडी को अपने दफ्तर के लोगों के आगे मौसी की तबीयत और नौकरी के बारे में सफाई देते हुए मैं अपने कानों से सुन ही चुका था।

मैं सीढ़ियां चढ़ते हुए, पल-भर को ठिठक गया, एक बार मौसी के यहां हो आने का ख्याल आया। लेकिन अगर उन्हें मेरे मुंह से शराब की गंध आयी या मेरे मुंह से कुछ उल्टा-सीधा निकल गया तो ? अंधेरे में खड़े-खड़े कई छोटे-छोटे मामूली दृश्य मेरे जेहन में उभरते चले गये।

मैं दबे पांव मौसी के दरवाजे तक जाकर, बेहद अभ्यस्त हाथों से

कॉलिंग-बेल बजाने जा ही रहा था कि अचानक हाथ हटा लिया। जापानी कॉलिंग बेल। उसे बजाते ही अंदर घंटे की आवाज की तरह छंदमय स्वर गूंज उठता था। कुछ दिनों पहले ख़रीदार उसे भी खींचकर उखाड़ ले गये थे। उनके बंद निःशब्द दरवाजे के ठंडे काठ से गाल सटाये मैं बहुत देर तक चुपचाप खड़ा रहा।

अलका से दूसरी मुलाकात भी बेहद अजीब तरीके से हुई।

अद्‌भुत जगह! अद्‌भुत दिन! अद्‌भुत माहौल!

उस दिन की चर्चा करने से पहले, बीच के लंबे अंतराल का कमोबेश हवाला देना भी जरूरी है न!

इसी बीच दो साल गुजर गये। मैं एम० ए० की परीक्षा देने वाला था। उम्र इक्कीस साल। विश्वविद्यालय में बंगला विभाग का छात्र होने के नाते मैं मन ही मन फ़ख्र महसूस किया करता था। अब मैं पहले जैसा उन्नीस वर्षीय झेंपू सूर्य नहीं रह गया था। दो-दो ट्यूशन करता था। अनियमित रूप से ही सही, एक छोटी पत्रिका भी निकालने लगा था। और भयंकर रूप से बालिग हो उठा था। अब मैं कॉफी हाउस का भीषण अड्डेबाज सूर्यराय बन गया था। बात-बात में सिगरेट जलाना, बेहिचक चीखना-चिल्लाना, अश्लील बातें करना, लड़कियों के पीछे मजनू बने फिरना—इन तमाम फनों में उस्ताद बन चुका था।

शाम होते ही अकेले में मेरा दम घुटने लगता था, रात को नींद टूटने पर, गर्दन घुमाकर आकाश की तरफ टकटकी बांधकर देखा करता था, शाम के धुंधलके में घर लौटते हुए, गली में हरसिंगार की महक पाकर मन उदास होने लगता था।

इस बीच मेरे भाई साहब भी शादी-ब्याह करके बीवी को लेकर अलग हो चुके थे। हालांकि मां इस मामले को लेकर काफी दुखी थीं, लेकिन मैं और मझले 'दा छिपे तौर पर भाई साहब का ही सपोर्ट करते थे। इस तरह उनका पक्ष लेने की खास वजह भी थी। अगर वे यहां टिके रहते, तो मुझे और मझले 'दा को कमरे के बीच वाले दालान में सोना पड़ता।

मेरी दो बहनों में दीदी ने यानी मझले'दा से छोटी और मुझसे बड़ी बहन ने रजिस्ट्री-ब्याह कर लिया था और अब वह पटना जा बसी थीं। अतः छुटकी बहन पिंकू भी आसानी से ब्याह गयी थी।

यानी घर में केवल मां-बापू, मैं और मझले 'दा। मैं तो इस घर में कभी-कभी ऐय्याशी करने की कोशिश करता था। हालांकि इससे घर की गंदगी ही बढ़ती थी। बेवजह जंजाल इकट्ठा होता जाता था। मसलन कभी-कभार मैं एक गुच्छा रजनीगंधा के फूल खरीद लाता था। कुछ दिनों बाद फूल झर जाते, डंठल पीले पड़ जाते, जड़ें सड़ने लगतीं, लेकिन मैं उन्हें फेंकने का नाम नहीं लेता था। बीच-बीच में मैं पत्र-पत्रिकाएं भी ला-लाकर इकट्ठी करता जाता था। मेलों-तमाशों से शौकीनी के छोटे-मोटे सामान खरीद लाता। उसके बाद, चाहे टूट-फूट जायें, गर्द पड़-पड़कर बदरंग हो जायें, लेकिन घरों के रिवाज के अनुसार सारा सामान कूड़े की तरह जमा होता जा रहा था, फेंकने का कोई सवाल ही नहीं उठता था।

इधर रूमा की भी कोई खास खबर नहीं मिली थी। साल-भर तक सब चुपचाप। इस बीच उसने मौसी को कुल मिलाकर दो खत डाले थे। दोनों खतों में उसने मौसी से रुपये मंगाये थे। मौसी ने अपना पुराना फ्लैट छोड़कर, अपने स्कूल के पास ही एक कमरा किराये पर ले लिया था। यहां रूमा के जो खत आते थे, मैं ही उन्हें मौसी को पहुंचा आता था।

दूसरे खत के कुछ ही दिनों बाद, रूमा एक बार कलकत्ता भी आयी और अपनी मां के कुछ कीमती साड़ी गहने ले गयी। उन दिनों वह मुझे अपने कमल खन्ना और तथाकथित मिली दत्त की दास्तान सुनाते नहीं

थकती थी।

डाइवोर्स मिलते ही मिली दत्त और उसके डैडी व्याह करने वाले थे। रूमा होस्टल में रहती थी। छुट्टियां विताने के लिए वह मिली दत्त या डैडी के फ्लैट में चली आती थी। उसकी और कमल खन्ना की जान-पहचान मिली दत्त के यहां ही हुई थी। अद्‌भुत तेजस्वी लड़का। इंजीनियरिंग के फाइनल ईयर में था! स्कूटर-मरम्मत का अपना लंबा-चौड़ा कारख़ाना था। मोटर साईकिल चलाने में विलक्षण। बिल्कुल आंधी की तरह उड़ाये लिए जाता था। कभी-कभी वह कमल खन्ना के साथ लंवे ड्राइव पर निकल जाती थी। वैसे अभी उसका व्याह के चक्कर में फंसने का कोई इरादा नहीं। अभी वह कम-से-कम वी० ए० जरूर करेगी इसी वीच नीतिश साहा अगर विदेश चले गये तो वह भी एकाध चक्कर लगा आयेगी।

इतनी सारी घटनाएं और योजनाएं सुनने के वाद क्या अपने पुराने वासी प्रेम की वात उठायी जा सकती थी?

लेकिन यह सब कई साल पहले की खवर है। इसके वाद करीव साल-भर तक, रूमा या नीतिश वावू की तरफ से डाइवोर्स के कागज-पत्रों के आदान-प्रदान के अलावा विशेष कोई खवर नहीं आयी! और मौसी की वातें शुरू करूं तो अलका की कहानी पीछे रह जायेगी। वहरहाल, मैं ऐसा नहीं करना चाहता, अतः फिलहाल मैं अलका की ही वातें शुरू करूं।

अगले साल दुर्गापूजा में, अपने मुहल्ले के पूजा-पंडाल में माइक्रोफोन हाथ लगते ही जिस वक्त मैं वेसिर-पैर की खुराफातें करने में मशगूल था, तभी मेरी जिंदगी में दूसरी अहम घटना घटी।

रात के करीव वारह वज चुके थे। महाषष्ठी की रात। उस वार मुहल्ले में दुर्गा-पूजा की सिल्वर-जुवली की धूमधाम थी। रोशनी का भी काफी तगड़ा इंतजाम किया गया था। आदिम गुहा-मानव की डिजाइन में अंकित दुर्गा-प्रतिमा। मुहल्ले से ही निकलने वाले एक अखवार के सह-संपादक से कह-सुनकर प्रतिमा की एक तस्वीर छपाने का भी इंतजाम किया गया था। इतनी सारी पब्लिसिटी के वाद जाहिर है

कि खूब भीड़ भी हुई। पैदल दर्शकों की भीड़, स्पेशल पुलिस भी उस भीड़ को कंट्रोल कर पाने में असफल हो गयी थी। उन लोगों और दल से छुटे हुए लोगों के नाम बार-बार माइक पर घोषित किए जा रहे थे। साथ ही जलसे का कार्यक्रम भी चल रहा था। गायक-गायिकाओं को बैठाने के लिए ऊंचा-सा मंच भी बनाया गया था, ताकि सब लोग उनको ठीक तरह से देख पाएं। यानी शो-बाजी का चरम रूप।

माइक हाथ में आते ही मैंने अपने दोस्तों से बाजी लगायी और रेडियो, रेकॉर्ड और फिल्मों के तमाम कॉमेडियनों और हीरो लोगों की नकल उतारने में व्यस्त हो गया।

अचानक बादल ने सूचना दी, "सूर्य 'दा, तुम्हें बीलू काका बुला रहे हैं।"

बीलू काका यानी मेरे बापू। मुहल्ले की पूजा कमेटी के ओल्डेस्ट सदस्य। बापू शायद मुझे डांटने-डपटने के लिए बुला रहे थे। वाकई मेरी खुराफातों की हद हो गयी थी।

मैं सहमा हुआ-सा वालंटियर-कैंप में दाखिल हुआ। अंदर बापू और उनके दो-चार मित्र बैठे हुए थे। बापू के सामने एक अपरिचित सज्जन बैठे थे। काफी कीमती सूट पहने हुए थे।

बापू ने उनकी तरफ इशारा करते हुए कहा, "ये साहब तुमसे मिलना चाहते हैं।"

मैं चकराया-सा उनके पास वाली कुर्सी पर बैठ गया।

वे सज्जन मेरे बापू की ही उम्र के थे। लेकिन हाव-भाव रूमा के डैडी की तरह! चेहरे पर पाउडर! कोट से आती हुई सेंट की तीखी खुशबू!

जब उन्होंने मेरी तरफ झुककर कुछ कहने को मुंह खोला, मैं समझ गया वे थोड़ी-सी चढ़ाकर आए हैं।

"इतनी देर से आप ही माइक पर एनाउंस कर रहे थे?"

मैंने सिर हिलाकर सहमति जतायी।

"आपकी आवाज बहुत अच्छी है—अलका कह रही थी।"

मैंने किंचित् मुस्कराकर उनकी तरफ देखा।

"मेना नाम सुधीन है ! सुधीन चौधरी ! देवी देखने निकला था। आपकी आवाज़ सुनकर, आपसे मिलने की तबीयत हो आयी। अलका भी काफी इंटरेस्टेड थी !!"

"ये अलका कौन हैं ?"

उन्होंने हंसकर कहा, "रेडियो पर कमर्शियल सर्विस सुनते हैं ?"

"कमर्शियल सर्विस ?"

"अरे, हां, वही चालू भाषा में जिसे विविध-भारती कहते हैं। विविध-भारती के अधिकांश जिंगलों में जिसकी आवाज सुनाई देती है—वही जनप्रिया जरीना अलका।"

मैं चौंक पड़ा ! जरीना की आवाज मुझे भी बेहद पसंद थी। जरा भारी-भारी-सी आवाज। मगर ऐसा लगता था मानो चमचमाते स्टील पर रुपहले पारे की बूंद फिसल रही हो। मन में सिहरन भर देनेवाली अद्‍भुत आवाज। यह आवाज जहां कहीं भी मेरे कानों में पड़ती थी, मैं झट पहचान जाता था। कोई सोच सकता था, कि उसी किन्नरकंठी जरीना ने आवाज सुनकर अपनी गाड़ी रोक दी थी ? जरीना का कंठ-स्वर सुन-सुनकर मैंने मन ही मन उसकी जो तस्वीर बनायी थी, वह रेकॉर्ड कवर पर बेगम अख्तर के तरुणाई के दिनों की तस्वीर से मिलती जुलती थी।

उन महोदय ने काफी सोफियाना-सा एक कार्ड निकालकर मेरे हाथ में थमाते हुए कहा, "किसी दिन हमारे दफ्तर में आइए न ? देखा जाये आपकी आवाज माइक पर कैसी आती है ? एकाध जिंगल भी कर देखिए !"

उनके चले जाने के बाद भी मैं काफी देर तक कार्ड थामे हुए उसी तरह खड़ा रहा। उसके बाद पंडाल में वापस नहीं लौटा। मेरे कदम धीरे-धीरे घर की तरफ मुड़ गये। मैंने कमरे के सारे खिड़की-दरवाजे बंद कर दिए ताकि माइक के गीत, पूजा-दर्शकों का शोरगुल यहां तक न पहुंच सके। अपना बैटरी-डाउन ट्रांजिस्टर लेकर, मैं अपने बिस्तर पर लेट गया और नॉब घुमाकर विविध-भारती ऑन कर दिया। मेरे कानों में किसी हिंदी गाने के बोल गूंज उठे। अचानक गीत रुक गया…

नन्ही-नन्ही घंटियां बज उठीं और अचानक वही चांदनी आवाज ! रुपहली घंटियों का स्वर ! वही किन्नर आवाज—

टर्किश बाथ
तुर्क के हमाम में नहाने जैसा आराम !
आपके अपने ही बाथरूम में !
अगर आप मर्द हैं···तो अपने को सुल्तान समझ बैठेंगे
अगर औरत हैं, तो आप मल्काए-जहान—सुल्ताना !
अपने लिए मनमोहक खुशबू !
अपनों के लिए तन मोहक खुशबू !
नहाने का अनोखा साबुन—टर्किश बाथ !
आपके रोम-कूपों से गंदगी मिटानेवाला,
सारे दिन तरोताजा और स्निग्ध रखनेवाला···

फिर वही घंटियां और बस !

जरीना ! जरीना !—अब तो मुझे उसका असली नाम भी पता चल गया था। अलका। लेकिन अलका की उम्र क्या होगी ? जाने देखने में कैसी होगी ? उसका मर्द कौन बनेगा···कहीं वह सुधीन चौधरी तो नहीं ? वह भी क्या उनकी ही उम्र की होगी ? अच्छा, उसकी सूरत-शक्ल कैसी होगी ? ठीक उसके कंठ-स्वर की तरह ? या वह काले रंग की कोई मोटी-सोटी-सी औरत होगी ? जैसी हमारी वह गायिका है न···शर्मिष्ठा दास ? देखने में हथिनी जैसी लेकिन आवाज ? बांसुरी की तरह लहराती हुई ! मीठी ! महीन ! सुरीली !

अगले दिन मेरे सारे कौतूहल का उत्तर मिल गया।

वह चौरंगी का ही कोई इलाका था। बाहर एनामेल-प्लेटिंग पर अंकित था—शब्द-भारती ! गेट के सामने दरबान बैठा था। वैसे उस बिल्डिंग में कई दफ्तर थे। एक तरफ तीर का चिह्न बनाकर फ्लोरेसेंट रंग में लिखा हुआ था—शब्द-भारती ! मैं आगे बढ़ता गया और शब्द-भारती के दरवाजे के सामने जा खड़ा हुआ। हल्के बैंजनी रंग का कमरा। चमचमाते हुए स्टील-फर्नीचरों से सजा हुआ दफ्तर। एक बड़ी-सी टेबुल के सामने जो बैठी हुई थी, वही अलका थी।

अलका ने उत्तर दिया, "प्लीज कम इन !"

यानी वह बात सच थी। जरीना का ही असली नाम अलका है ? और यह अलका वही लड़की है, जिसे मैंने सलिल नंदी के साथ उस आकाशचुंबी मकान के अजीबोगरीब माहौल में देखा था। अब यह बताना बिल्कुल फिजूल है कि अलका मुझे नहीं पहचान पायी। हां, उन्नीस से इक्कीस वर्ष के दरमियान दुनिया शायद इतनी बदल जाती है कि देह तो देह, व्यक्तित्व तक उससे अछूता नहीं रहता।

"मुझे सूर्य राय कहते हैं।"

अलका ने अपनी उजली-धुली आंखें मेरी तरफ उठा दीं। उसकी आंखों में हंसी-खुशी की दिव्य चमक थी।

"अच्छा ! अच्छा ! आप जरा देर बैठेंगे ?"

मैं उसके सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया।

"जरा, मैं ये कागज निपटा लूं। उसके बाद आपकी आवाज टेस्ट करने के लिए ले चलूंगी।"

मैं कुर्सी में धंसकर बैठ गया।

अलका ने ही कहा, "जानते हैं, चौधरी साहब से मेरी शर्त लगी है। मेरा दावा है कि आपकी आवाज जिंगल के लिए वंडरफुल होगी।"

मेरे होठों पर झेंपती हुई मुस्कान खिंच आयी। मुझे पसीना आने लगा। यूं मन ही मन फख्र भी महसूस कर रहा था।

अलका बैठी-बैठी कुछेक चिट्ठियां चालान-खाते से देख-देखकर मिलाती जा रही थी और दस्तखत करती जाती थी। मेरे पास कोई काम नहीं था, देखने लायक और कोई आकर्षक दृश्य भी नहीं था, अतः एक पत्रिका के पन्ने उलटते-पलटते अनायास ही मेरी आंखें घूम-फिरकर अलका की ओर ही टिकी रहीं। वह चौरंगी के किसी टिप-टॉप दफ्तर की टिप-टॉप रिसेप्शनिस्ट लग रही थी। पतली-सी मांग ! सीधी मांग ! मांग की तरफ सपाट संवारे हुए बाल, पीछे की तरफ बल खाकर उलट गये थे। नंगी बांह और कमर की नुमाइश दिखाती हुई चोली ! चोली के ऊपर उसी रंग की हल्की झीनी साड़ी। उसकी सूती साड़ी इतनी झीनी थी कि अंदर से खूबसूरत लेसवाला पेटीकोट साफ झलक रहा था। वह

बेहद चुस्त और स्मार्ट लग रही थी—बिल्कुल मशीनवुत ! ए स्ट्रीम लाइंड ! अद्भुत सहज और उन्मुक्त ! काम करते हुए बीच-बीच में वह मुस्कराते हुए मेरी ओर भी देख लेती थी और मेरे बारे में दो-एक सवाल भी करती जाती थी। वह मेरी पढ़ाई-लिखाई, काम-काज, हॉबी आदि के बारे में पूछती रही। अपना काम खत्म करके, वह उठ खड़ी हुई। अपने बालों के इकलौते झूमर को बड़े खूबसूरत अंदाज से पीछे झटककर कहा, "चलिए, अब आपको मैं अपने नन्हे-मुन्ने स्टूडियो की सैर करा लाऊं।"

गैराजनुमा एक छोटी-सी जगह में थोड़ा-बहुत हेर-फेर करके, एक खूबसूरत-सा स्टूडियो बना लिया गया था। पतली-पतली ईंटों पर साउंड-प्रूफ दीवारों की पर्त। दरवाजे पर इलेक्ट्रोप्लेटिंग और पॉलिश से चमचमाते हुए हैंडल। अलका दरवाजा खोलकर अंदर गयी और उसने स्विच दबाकर कमरे के घुप्प अंधेरे को एकबारगी उजाले में बदल दिया। जब मैंने कमरे में कदम रखा, चारों तरफ रोशनी बरस रही थी।

हमने अपने जूते उतार दिए और कालीन पर खड़े हो गये। खिड़की-दरवाजे-विहीन कमरे की घुटन अब कम होने लगी थी, क्रमशः एयरकंडीशन की ठंडक फैलती जा रही थी। मेरे अंदर की पिघलती हुई नर्वसनेस, दिमागी अस्थिरता भी अब ठंडक पाकर संयत हो आयी। अलका ने झकझकाते हुए मशीनों के पास जाकर, तरह-तरह के कई स्विच एक साथ ऑन कर दिए। स्टील रंग की मशीनों में मणियों जैसी लाल-हरी रोशनी, मशीन चालू होने का संकेत दे रही थी। मशीनों से घर्र-घर्र की आवाजें आने लगीं। कंट्रोलिंग-बूथ चालू करके, स्विच ऑन करते ही, माइक्रोफोन सजीव हो उठा। अलका ने माइक की महीन जाली के सामने खड़ी होकर चुटकी बजायी। माइक पर एक अद्भुत-सी तरंग लहरा उठी। उसने ड्राअर से एक टेप निकाला और मशीन पर चढ़ा दिया। मशीनों के मामले में भी उसकी तत्परता देखकर मैं वाकई अवाक्-सा रह गया था।

उसने हंसती हुई आंखों से मेरी ओर देखकर कहा, "लीजिए, अब

माइक्रोफोन के सामने खड़े हो जाइये और कुछ बोलिये। कोई कविता या गद्य का कोई टुकड़ा।"

मैंने नर्वस आवाज में जीवनानंद दास की वनलता सेन की आवृत्ति शुरू की। शुरू-शुरू में मेरा गला बेतरह कांप रहा था। शायद मैं माइक के बहुत करीब चला आया था। अलका ने हाथ हिलाकर मुझे जरा पीछे हटने को कहा। अपनी कविता समाप्त करते हुए मैंने गौर किया उसके चेहरे पर संतोष की झलक थी।

कानों में हेड-फोन लगाकर उसने मेरी रिकार्डिंग दुबारा सुनी। और मुझे लगा वह काफी खुश थी। आवृत्ति खत्म करके मैंने निहायत बचपने के अंदाज में कहा, "हमें नहीं सुनाएंगी ?"

स्विच दबाते ही टेप फर्र-फर्र करके पीछे घूम गया। अलका ने टेप दुबारा चला दिया। मैं मंत्र-मुग्ध-सा अपनी आवाज सुनता रहा। हम सब अपने-आप को किस कदर प्यार करते हैं। टेप सुनाते-सुनाते अलका बीच-बीच में टेप रोककर मुझे समझाती जा रही थी कि कहां मेरी आवाज कमजोर पड़ गयी, कहां उच्चारण गलत हो गया। हम दोनों एक-दूसरे से सिर भिड़ाकर टेप सुनते-सुनते अचानक जाने कब गहरे दोस्त बन गये थे। टेप खत्म होते ही मैंने अलका से पूछा, "कैसा लगा ?"

"काफी संभावना है ! विलक्षण आवाज !"

उसकी आवाज से जिंगल सुनने की इच्छा जाहिर करने पर, उसने अपने कुछेक जिंगल भी सुनाए। लेकिन सारा काम निपट जाने के बावजूद मेरा मन हो रहा था कि उस ठंडे, शीत-ताप-नियंत्रित स्टूडियो में बरसती हुई नीलाभ रोशनी के नीचे अलका के पास ही बैठा रहूं। लेकिन अब तो कोई बहाना भी नहीं था। खैर, अगले दिन मेरी आवाज में एक जिंगल रेकॉर्ड होने की बात तय होने के बाद मैं घर लौट आया।

लेकिन उसके बाद मैं इस कदर व्यस्त रहा कि करीब हफ्ते भर तक शब्द-भारती की तरफ रुख करने की फुर्सत ही नहीं मिली।

जिंदगी के कारखाने में अचानक खुलकर गिर पड़ने वाले नट-बोल्ट की तरह, वह दिन भी अन्य दिनों से थोड़ा अलग और बेढब था। छोटी-बड़ी घटनाओं के लंबे सिलसिले के बीच, घन घटा की तरह फट

पड़ने वाली घटना की तरह। उस दिन अलका के यहां से निकलकर, रास्ते पर चलते-चलते मैं अंदर से बेहद हलका महसूस कर रहा था। सामने ही लंबा-चौड़ा मैदान था। मैं मैदान के किनारे-किनारे चलता गया। मेरे दिमाग में मानो सिर्फ एक शब्द ही बार-बार बजे जा रहा था। खुशखबरी! खुशखबरी! दो-एक ट्यूशनों के अलावा, आज तक मैंने कोई कमाई नहीं की थी। पहली बार, किंचित् सम्मानजनक तरीके से कुछ रुपये मिलने की संभावना दिखी थी।

मुझ जैसे लड़के की जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, सिगरेट का खर्च भी बढ़ता जाता है, कपड़े-लत्तों में भी थोड़ी-बहुत बाबूगिरी करने की साध जागती है। इसके लिए उन्हें मां-बाप के आगे हाथ फैलाना पड़ता है। लेकिन मुझे यह इतना नागवार गुजरा था कि···

अतः अपनी यह खुशखबरी मौसी को सुनाने का मन हो आया। अभी मुहल्ले या परिवार के अन्य किसी व्यक्ति को कुछ बताना अनुचित होता। मान लो, जिंगल नहीं बना। मेरी आवाज पार्टी नापसंद कर दे, तब हर कोई मेरा मजाक उड़ाएगा, लेकिन मौसी से तो सारी बातें बतायी जा सकती हैं। अगर मैं नाकामयाब भी रहा, तो कम-से-कम मौसी मुझ पर हरगिज नहीं हंसेगी। रूमा के माध्यम से मौसी से मेरा जितना परिचय था, इधर दो सालों में वह गहरी दोस्ती में बदल चुका था।

हमारे घर से, कुछ ही दूर पर किसी संकरी गली में एक छोटे-से किराये के कमरे में वे रहती थीं। जिस स्कूल में वे हेडमिस्ट्रेस थीं, वह स्कूल उनके घर से काफी नजदीक था। मैं अक्सर ही मौसी के यहां चला जाता था। वे मुझे अपनी जिंदगी की तमाम छोटी-मोटी घटनाएं बताया करती थीं। किसी जमाने में वे कॉलेज में पढ़ाया करती थीं। उन्हीं दिनों उन्होंने रूमा के डैडी से प्रेम-विवाह किया था। उस समय उसके डैडी मामूली-सी नौकरी करते थे। मौसी ही मुख्य रूप से पति की परवरिश कर रही थीं। मैंने औरों से सुना था उन दिनों रूमा के डैडी में कई तरह के मानसिक कम्प्लेक्स जाग उठे थे। पत्नी अगर बेहतर नौकरी करती हो तो पति शायद यूं ही विकारग्रस्त हो जाते हैं, इसके अलावा रूमा के डैडी को उस जमाने में भी नित्य नयी-नयी सुंदर पोशाकें,

बढ़िया खाने-पीने वगैरह का अतिशय शौक था। इन सबकी पूर्ति के लिए मौसी को पढ़ाने के अलावा अतिरिक्त काम भी करना पड़ता था। मौसी के ही अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप रूमा के डैडी को भी एक बढ़िया-सी नौकरी मिल गयी। पति के खाने-पीने और देखभाल में कोई कमी न हो, इस इरादे से पति को बढ़िया नौकरी मिलते ही, उन्होंने अपनी लगी-लगायी नौकरी फौरन छोड़ दी और बेटी को लेकर खुशी-खुशी नयी गृहस्थी बसाने पूना चल दीं।

मेरे लिए चाय बनाते-बनाते मौसी जब सपनों में डूबी हुई अपने पिछले दिनों की कहानियां सुनाया करतीं तो ऐसा लगता था, मानो वे पीछे छोड़ आये दिनों में दुबारा लौट गयी हों। वैसे वे सारी बातें बिल्कुल खोलकर तो मुझे नहीं बता सकती थीं, लेकिन मेरा ख्याल बिल्कुल सही था। पूना में रहते-रहते ही उनके सारे सपने एक-एक करके टूटते चले गये। शुरू-शुरू में छोटे-छोटे तकरार, ओछापन— ये सब तो वे बरदाश्त कर लेती थीं, लेकिन जैसे-जैसे दिन गुजरते गये, वैसे-वैसे दो-चार बड़ी-बड़ी घटनाएं घटने लगीं। सिर्फ औरतबाजी ही नहीं, और भी कई-कई मामलों में नीतिश साहा की नीचता उनकी नजरों में आने लगी। वर्ना कलकत्ता लौटकर वे दुबारा नौकरी नहीं करतीं। घर-गृहस्थी से उन्हें बेहद लगाव था, उन्हें घर के कामों में अधिक सुख मिलता था। लेकिन शायद उन्हें खुद ही आभास हो गया था कि ऐसा एक वक्त आने वाला है, जब नौकरी उनके लिए नितांत जरूरी हो जायेगी। वैसे मौसी तो और भी कई आशंकाओं से ग्रस्त हो उठी थीं। उनको तो इस बारे में भी शक था कि नीतिश साहा शायद रूमा की भी ठीक तरह से देखभाल न करें। इसीलिए वह उसके लिए अपनी सारी की सारी तनख्वाह यक्ष के धन की तरह जमा करती रहीं। संजोती रहीं।

मौसी का यह कमरा मुझे बेहद पसंद था। संकरी गली के छोर पर एक छोटा-सा कमरा। ठंडी, धुली-पुंछी मोटी दो चटाइयां, उस पर तहाए हुए एक जोड़ी मोटे-मोटे पहाड़ी कंबलों का पतला-सा बिछौना। पैताने, अधखुली खिड़की के नीचे जनता-स्टोव और दो-चार बर्तन-भांडे। एक

लंबी टांड़ पर शायद कुछेक धार्मिक ग्रंथ। दूसरी तरफ ताखे पर झूलता हुआ पुराने कपड़े का सादा-झीना पर्दा। पर्दे की दरार से झांकती हुई फ्रेममढ़ी मटमैली-सी तस्वीर। शायद श्री रामकृष्ण परमहंसदेव और श्री श्रीमां की तस्वीर थी। रस्सी पर लटकती हुई उनकी दो-चार साड़ियां। बस! मैं उनके पास आकर उनसे बातें करके बेहद राहत महसूस करता था। कभी-कभार उनका कोई सौदा और साग-सब्जी भी ला दिया करता था। शुरू-शुरू में उन्हें संकोच होता था, बाद में वे काफी सहज हो गयी थीं।

मौसी के मन में मेरे लिए एक अलग जगह बनती जा रही थी। शायद उन्हें आभास हो गया था कि रूमा को मैं···दरअसल रूमा ही तो मेरी जिंदगी का सबसे पहला दुख थी। शायद उन्होंने खुद भी महसूस किया था, वह कैसी निर्ममता से मुझे छोड़कर चली गयी थी। मुझे अपनी जिंदगी से छांटकर अलग फेंक दिया गया था। लेकिन मौसी के मन में, मुझे जिंदगी में सफल और सुखी देखने की चाह थी।

मैंने जूते उतारते हुए उन्हें आहिस्ते-से आवाज दी, "मौसी, मैं आ जाऊं?"

"आओ, सूर्य!"

मैं उढ़का हुआ दरवाजा खोलकर अंदर चला आया। मौसी निश्चल बैठी हुई थीं। मैं बेहद उत्साह-भरे स्वर में उन्हें अलका, शब्द-भारती, 'जिंगल' में अपनी आवाज देने की खबरें सुनाता रहा। लेकिन अपनी बात खत्म करने के बाद अचानक मैंने महसूस किया, मौसी बहुत उखड़ी हुई हैं। वे घुटनों पर ठुड्डी टिकाए गतिहीन-सी बैठी थीं।

मैंने पूछा, "आपकी तबीयत तो ठीक है, मौसी?"

"ना, सूर्य!"

मौसी की आवाज भर्रायी हुई और भरी-भरी-सी थी। मैंने उठकर बत्ती जलायी। मौसी के बाल अस्त-व्यस्त थे। शायद वे काफी देर से लेटी हुई थीं, मुझे देखते ही उठकर बैठ गयी थीं। उन्होंने बदन पर काली-पतली किनारवाली अधमैली-सी साड़ी लपेट रखी थी। मैंने गौर किया, रोज इस वक्त उनके जनता-स्टोव से आग की नीली-नीली लपटें

उठा करती थीं, लेकिन आज उनका स्टोव बुझा हुआ था। भात पकाने का वर्तन उसी तरह धुला-मंजा उल्टा रखा हुआ था।

"जानते हो सूर्य, आज रूमा के डैंडी को डायवोर्स मिल गया!"

मौसी की बातें मेरे सीने में तीर-सी बिंध गयीं। मुझे यह तो मालूम था कि रूमा के डैंडी ने डाइवोर्स के लिए आवेदन किया था और मौसी ने अपनी तरफ से उसमें रंचमात्र भी एतराज नहीं किया था।

"मैं तो उन लोगों से वहुत दिन पहले ही दूर हो गयी थी और अंदर ही अंदर उन लोगों की तरफ से भी सारे रिश्ते-नाते, जाने कभी के खत्म हो चुके थे।"

मैं भी उसी तरह चुपचाप वैठा रहा।

मौसी खुद ही धीरे-धीरे अपने मन की गिरह खोलती जा रही थीं।

व्याह के करीव छह साल वाद, एक दिन रूमा के डैंडी जव रात ढाई बजे घर लौटे थे, मैंने पूछा था, "आज तो तुम्हारी कोई फ्लाइट नहीं थी, इतनी रात कैसे हो गयी? और तुम तो कह गये थे कि फ्लाइट पर जा रहे हो? तुम्हारे दफ्तर में फोन किया था तो पता चला कि आज तुम्हारा ऑफ-डे था?"

वस मारे गुस्से के वे फट पड़े—"तुम्हें किसने कहा था फोन करने के लिए?"

मैंने सिर झुकाकर जवाव दिया, "हठात् रूमा गिर पड़ी थी। होंठ कट गया, स्टिच लगाना पड़ा, इसीलिए फोन किया था। मैंने सोचा, तुम रहो तो जरा हौसला रहेगा।"

रूमा के पिता ने जाने कैसी नफरत से मेरी ओर देखकर कहा था, "हुंह, माथा तो नहीं फट गया था। टांग तो नहीं टूट गयी थी, जरा-सा होंठ ही कट गया था न! इतनी जरा-सी बात के लिए तूफान मचा डाला?"

और देख लो सूर्य, इस हादसे के दस साल वाद, आज बाप-वेटी दूध-पानी की तरह एक हो गये। जाने से पहले एक दिन रूमा तक ने मुझको झिड़ककर कहा, "मां, तुम जरा अपने कपड़े के तौर-तरीके वदल डालो। ऐसे वकवास-से कपड़े और ऐसी वकवास-सी दीदीमणि का

पेशा···आखिर मेरी या मेरे डैडी की भी तो कोई प्रेस्टिज है ? मुझे बहुत शर्म आती है। तुम हमारे मेहमानों के सामने ऐसी हुलिया में मत आया करो !" हां, उसने सच कहा था, सूर्य !

एक दिन रूमा के डैडी की एक इटालियन एयर-होस्टेस साथिन ने कहा था, "नीतिश, अपनी आया से कहो, मेरे लिए एक ठंडा लाइमजूस बना लाये।" हां सूर्य, इसी तरह धीरे-धीरे उन लोगों ने मुझसे मुंह फेर लिया था। मैं भी हमेशा यही कोशिश करती रही कि उनसे अपने को यथासंभव दूर हटा ले जाऊं।

तुम सोच देखो। एक ही घर के अंदर कुल मिलाकर तीन प्राणी इतने पास-पास रहते थे, लेकिन एक-दूसरे से कितने दूर और अलग हो चुके थे !

कमरे के हल्के पॉवर की रोशनी में मैं मौसी का चेहरा पढ़ रहा था। आंसुओं से गढ़ी हुई एक उदास मूर्ति। मौसी को मैं चाहकर भी रोक नहीं पाया। वे उसी तरह अनर्गल बोले जा रही थीं—

जानते हो सूर्य, उस घर में रहते हुए, मैं अपनी देह को तो अपने से काटकर अलग नहीं कर सकती थी न ! इसकी वजह से मैंने कितनी-कितनी तकलीफें सही हैं। हालांकि हम दोनों एक ही कमरे में सोते थे —वे पलंग पर और मैं जमीन पर। मैं उन लोगों को गोश्त पकाकर देती थी, उसके बाद अपने लिए चावल उबालती थी। जानते हो, शराब की गंध मुझसे सहन नहीं होती थी, लेकिन फिर भी मुझे उसी माहौल में सांस लेनी पड़ती थी। एक कमरे में उनकी पार्टियों की हो-हुल्लड़ और इस कमरे में रूमा की मनमानी—और मैं बलि के बकरे की तरह सब-कुछ बरदाश्त करती रहती थी। लेकिन फिर भी सबसे कितना मोह था मुझे ! मैं अपने को ही समझाने की कोशिश करती थी कि मैं ही गलत-सलत सोचती या देखती हूं। थोड़े दिनों बाद सब ठीक हो जायेगा। हम दुबारा मिल जायेंगे।

तुम यक़ीन मानो सूर्य, इतनी दूर निकल आने के बाद भी, इस कदर टूट-बिखर जाने के बाद भी, कहीं एक सूत अब भी जुड़ा हुआ था। आज वह रहा-सहा सूत भी गया !

मैंने देखा, मौसी की आंखों से आंसुओं की मोटी-मोटी धार, गालों तक वह निकली थी। काफी देर खामोश बैठे रहने के बाद, मैंने खुद ही उठकर स्टोव जलाया। वे डिब्बे का दूध पीती थीं। मैंने दूध बनाकर, डिब्बे में से दो विस्कुट निकाले और मौसी के सामने रख दिये।

मौसी ने सिर उठाकर एक बार मेरी तरफ देखा और कहा, "अच्छा, अब तुम जाओ, सूर्य ! मैं ठीक से खा-पी लूंगी। शाम हो चुकी है। तुम्हारी मां फिक्र करती होंगी।"

मैंने धीरे-से उठकर दरवाजा उढ़का दिया और नीचे गली में उतर आया। अचानक उन्होंने खिड़की से झांककर दुबारा आवाज दी, "सूर्य, जरा इधर तो आना।"

मैं लौटकर खिड़की के नीचे आ खड़ा हुआ।

खिड़की से उनके चेहरे पर अंकित भावों की बस, एक झलक-भर ही मिली।

मौसी ने अपनी रुलाई दबाते हुए कहा, "सूर्य, मेरे राजा बेटे ! रूमा कभी आये तो तुम उसे लौटा मत देना !"

इतने दिनों के बाद रूमा की चर्चा क्यों ? अब तो सब-कुछ खत्म हो चुका है। मैं किंचित् विस्मित हो उठा।

अगले दिन मौसी को गले में रस्सी बांधकर पंखे की कुंडी से झूलता हुआ पाया गया।

फांसी लगाने के लिए वे बगल वाले फ्लैट से एक कुर्सी मांग लायी थीं। मैंने देखा था, उनके पैरों के पास ही एक खाली कप और प्लेट पड़ी थी। यानी जाने से पहले दुनिया के एक अदने से इन्सान के हाथ से उन्होंने स्नेह का आखिरी तोहफा स्वीकार किया था।

नतीजा यह हुआ कि अगले सात दिनों तक मैं शब्द-भारती की ओर रुख ही नहीं कर पाया। नीतिश साहा को टेलिग्राम करना, रूमा को खत लिखना। पुलिस के हजारों सवालों का जवाब, मौसी की डायरी से पता ढूंढ़कर सदियों पहले सारे संबंध टूट जाने वाले मायके का ठिकाना निकालकर उनके भाई के पास जाना, वगैरह-वगैरह जाने कितने काम आ पड़े। लेकिन मैं उनका दाह-संस्कार जैसा करना चाहता था,

नहीं कर पाया। रूमा लोगों के यहां से कोई नहीं आया। मौसी के भाइयों ने भी आने से मना कर दिया। मरने के पहले मौसी एक खत लिखकर अपनी आत्महत्या की वात बिल्कुल साफ-साफ स्वीकार कर गयी थीं ताकि इसमें किसी और को न फंसाया जाये। उनकी आत्महत्या सावित हो चुकी थी। वे अपने बैंक की पास-बुक, रूमा के नाम खरीदी हुई जमीन के कागजात वगैरह काफी एहतियात से सहेजकर एक बड़े-से लिफाफे में भरकर रख गयी थीं। उस लिफाफे के ऊपर मेरा नाम लिखा हुआ था। अतः यह सारी जिम्मेदारी आखिरकार मेरे ही सिर आ पड़ी।

इस हादसे के करीब हफ्ते-भर बाद मैं शब्द-भारती के दफ्तर पहुंचा। उस दिन अलका की कुर्सी पर पाउडर-पुते चेहरे वाले वही सज्जन बैठे थे, जिनका नाम सुधीन चौधरी था।

मुझे देखकर वे बेसाख्ता हंस पड़े, "बात क्या है ? उस दिन बाजे-वाली पार्टी के साथ अलका और मैं जाने कितनी देर तक इंतजार करते रहे लेकिन साहब, आप तो जो गये, फिर लौटे ही नहीं। आपके लिए मैंने सिर के बालों का एक वंडरफुल स्क्रिप्ट रख छोड़ा था। अलका की भी कतई इच्छा नहीं थी कि वह जिंगल किसी और से कराया जाये, लेकिन अंत में लाचार होकर वह स्क्रिप्ट अशोक हाजरा को ही देनी पड़ी। वैसे अशोक हाजरा की आवाज भी इतनी बुरी नहीं है। बात दरअसल यह है कि उसकी आवाज अब इतनी परिचित हो गयी है कि पिट गयी है। हमारे यहां बहुत से विज्ञापनदाता ऐसे हैं, जो बिल्कुल फ्रेश और नयी आवाज चाहते हैं।

मुझे सुधीन चौधरी की बातों में खासा मजा आ रहा था। मैंने पूछा, "यह फ्रेश आवाज का क्या चक्कर है ?"

"इसका मतलब आप समझना चाहते हैं ? मान लीजिए दो अलग-अलग चाय कंपनियों के दो प्रतियोगी ब्रांड हैं। अब दोनों का विज्ञापन अगर एक ही आवाज में हो, यानी मुझे यह चाय भी पसंद है और वह चाय भी। तो सोच-विचारकर काम करना पड़ता है, समझे ? केवल कहां क्या हो रहा है, कौन-से आदमी ने किस विज्ञापन में आवाज दी है, इन सबकी भी खबर रखनी पड़ती है।

उसी समय उंगली में गाड़ी की चाबी नचाते हुए अलका कमरे में दाखिल हुई। मुझे देखकर वह ठिठक गयी।

मैं जरा अपराधी भाव से मुस्करा दिया।

"आप न, भयंकर गैर-जिम्मेदार आदमी हैं सूर्य बाबू ! आने का वायदा करके अच्छी-खासी डुबकी मार गये !"

अलका की ओर देखते हुए अचानक मेरे मन में मौसी की मौत की खबर सुनाने की तीखी इच्छा जाग उठी। लेकिन मुझसे कुछ बोला ही नहीं गया। सुधीन चौधरी के उस लक-दक कार्यालय में मेरी बातें कहीं कोई रुकावट पैदा न कर दें, इसीलिए मैंने अलका की ओर देखकर झट से एक झूठा बहाना जड़ दिया।

मैंने बताया कि मुझे भयंकर फ्लू हो गया था। कई दिनों बुखार मे बेहोश रहा।

अलका हंसते हुए अचानक चौधरी की कुर्सी के हत्थे पर जा बैठी मुझे उसकी यह हरकत बेहद अशोभन लगी।

उसने चौधरी साहब के कंधे के इर्द-गिर्द अपनी बांहें लपेटक पूछा, "अच्छा चौधरी साहब, उजाला टूथपेस्ट वाला नया जिंगल ह लोग सूर्य राय से करायें तो कैसा रहे !"

चौधरी साहब ने अलका के हाथों पर अपना हाथ रख दिया औ उसके सीने से अपना सिर टिकाते हुए अजीब स्वप्निल आवाज में कह "क्यों नहीं कराया जा सकता ? अलबत्ता कराया जा सकता है !"

अलका ने कहा, "अच्छा तो फिर सूर्य को रिहर्सल करा दूं न !"

चौधरी साहब की पलकें अधमुंदी हो आयी थीं। उन्होंने सिर हिलाकर सहमति जतायी। अलका कुर्सी के हत्थे से उतर पड़ी और मुझे साथ लेकर स्टुडियो की तरफ चल दी।

करीब घंटे-भर बाद, कुल मिलाकर दो 'कट' पूरा करने के बाद जब हम दफ्तर में आये, तब तक कुर्सी की मालिकी बदल चुकी थी। कुर्सी के मालिक उठकर चले गये थे, उनकी जगह मालकिन आ बैठी थीं।

बिलकुल सिकुड़ी-सी बीमार, बदशक्ल और ऊंचे-ऊंचे दांतोंवाली एक मद्रासी महिला। नाक पर चश्मा, माथे पर साईंबाबा का भस्म और कुंकुम की बिंदी। वह ट्रांजिस्टर खोलकर बड़े ध्यान से कुछ सुन रही थीं और कागज पर निशान लगाती जा रही थीं।

अलका को देखकर वह गाल भरकर हंसीं। मैंने ऐसी हंसी पहले कभी नहीं देखी थी, मानो वह हंसी ही नहीं थी।

उन्होंने विचित्र-से मद्रासी टोन में कहा, "तुम्हारे मौसाजी बर्मा-शेल के ऑफिस गये हैं। तुम्हारे लिए रिच बॉन्ड वालों से नया रेट फाइनल करने को कह गये हैं।"

अलका मानो अंदर से आती हुई उबकाई दबाती रही। अचानक उसने अजीब-सा मुंह बनाकर पूछा, "चौधरी साहब और कुछ नहीं कह गए?"

"तुम्हारे मौसाजी? नहीं तो!"

"लेकिन, चौधरी साहब तो···"

"कौन तुम्हारे मौसा? वे तो···"

"लेकिन आज तो मेरी उनके साथ जाने की बात है। क्लब में दावत है! सुपर-फोमवाले ने लंच-पार्टी दी है।"

"लेकिन तुम्हारे मौसाजी ने तो मुझे इस बारे में कुछ भी नहीं बताया।"

मैं समझ गया था किसी खास वजह से अलका उन महिला को भड़काने पर आमादा है और काफी देर से वह इसी कोशिश में लगी हुई है। इतनी देर बाद उसकी मेहनत किंचित् सार्थक होती जान पड़ी।

लेकिन बस, पल भर के लिए ही ! पल-भर बाद ही उन महिला का तना हुआ चेहरा हठात् कोमल और मधुर हो आया। उनके सूखे हुए होठों पर वही रूखी-सी मुस्कान उभर आयी, "तब तो तुम फौरन घर भागो, डीयर ! कपड़े-वपड़े बदल डालो। शायद तुम्हारे अंकल तुम्हें वहीं से पिक-अप करते जायें।"

अलका ने घूमकर मेरा हाथ थामते हुए कहा, "चलो, सूर्य !"

हम दोनों जब दरवाजे से बाहर निकल रहे थे, एक अच्छी-खासी, लंबी-चौड़ी औरत हमसे लगभग टकराती हुई अंदर घुसी। उसकी मिनी-स्कर्ट और नायलेक्स की बनियान आंखों में चुभ गयी।

"हाय—लोको !"

"हाय—सनी !"

पसीने में चिपचिपाते हुए बाल और सेंट के गंध की एक तीखी भभक मुझे छूकर निकल गयी।

मैंने बाहर निकलकर अलका से पूछा, "यह चक्कर क्या था, बताओगी ?"

"कौन-सा चक्कर ?"

"यही—मौसाजी और चौधरी साहब का चक्कर ?"

अलका ने रुक-रुककर कहा, "क्यों ? तुम्हें समझ नहीं आया ? बनते हो ?"

"नहीं तो ! अच्छा, यह हथिनी लड़की कौन थी ?"

अलका हंस दी, "यह तुमने खूब नाम दिया। वाकई वह मिनी-साइज हथिनी ही लगती है !"

"याने ?" मैंने फिर पूछा।

अलका ने मेरी ओर घूमकर मेरी आंखों में झांकते हुए कहा, "सुनो सूर्य, सनी मेरी क्लास-फ्रेंड जरूर थी, लेकिन उसके पिता यानी चौधरी साहब इस जन्म में तो क्या किसी भी जन्म में मेरे मौसा नहीं हो सकते। समझे ! अच्छा, चलो अब !"

"कहां ?" मैंने भी पूछा।

"आओ तो सही !" अलका ने कहा।

मैं अलका के पीछे-पीछे बाहर तक चला आया। उसने एक सफेद रंग की एम्बेसेडर में चाबी लगाकर दरवाजा खोला।

ड्राइविंग सीट पर बैठकर जब उसने अपनी बगलवाली सीट का दरवाजा खोल दिया, तो मैंने पूरी ताकत से यह कहने की कोशिश की कि मैं बस में ही चला जाऊंगा। लेकिन एक नहीं सैंकड़ों अजीबोगरीब कारणों से मेरा मन उसके साथ जाने को एकबारगी हो आया। मैं खुद महसूस कर रहा था, अपनी इस हम-उम्र साथिन से मैं एक ही सांस में नफरत और ईर्ष्या करने लगा था और उसके अद्भुत गुणों की वजह से उसका रौब भी मानने लगा था।

मेरी आंखों में दो साल पहले की वह मुलाकात घूम गयी और मन में उसके प्रति रीझ-खीज की तीखी प्रतिक्रिया जाग उठी।

मेरे बैठते ही अलका ने गाड़ी स्टार्ट कर दी और तेजी से टर्न लेते हुए सर्राटे से गेट के बाहर निकल आयी।

"अब हम जा कहां रहे हैं?"

"मौसाजी तो नहीं लेकिन मेरी मित्र के पिता चौधरी साहब ने नजराने में मुझे एक फ्लैट दे डाला है, फिलहाल हम वहीं चल रहे हैं। तुमने सुना नहीं? जो शख्स कहीं से दूर-दराज मेरा मौसा नहीं है, लेकिन जिनकी पत्नी मेरी मौसी लगती है, उन्हीं के शब्दों में मुझे सज-संवरकर तैयार रहना चाहिए। उनके श्रीमान पति महोदय मुझे पिक-अप करने के लिए आते होंगे। हम पार्टी में जा रहे हैं। मुझे अपनी बातचीत की अदाओं से उनकी पार्टी को खुश करना होगा। ताकि हमें उनसे बिजनेस मिल सके।"

"तब तुम मुझे अपने फ्लैट तक क्यों घसीटे लिये जा रही हो, अलका?" मैंने विरस लहजे में पूछा।

"अपने घर जाओगे? हैं? बताओ कहां है तुम्हारा घर?"

अचानक मुझे शरारत सूझी। मैंने टिपिकल बंगला भाषा में डायलॉग मारा, "मैडम, आपकी इतनी बड़ी एम्बेसेडर कार क्या उतनी दूर जा सकेगी? मैं रहता हूं, श्याम बाजार की शशि सरकार लेन में!"

अलका ने अचकचाकर ब्रेक दबाया। गाड़ी रुक गयी। वह एक-

बारगी मेरी तरफ घूम गयी और थोड़ी देर तक मेरी ओर भरपूर निगाहों से देखती रही।

मैंने हंसते हुए अलका की आंखों में देखा। उसकी आंखों की पुतलियां तेजी से घूम रही थीं और आहिस्ता-आहिस्ता उसकी आंखों में दो साल पहले बॉबी-मिनी के मकान में हुई मुलाकात की यादें तिर आयीं। इतने दिनों बाद वह इक्कीस साल की उम्र लांघकर मेरे उन्नीस साल में पहुंच गयी।

उसने स्टीयरिंग छोड़कर मेरी पीठ पर हल्की-सी एक धौल जमाते हुए हंसकर कहा, "यू विलेन !"

मैं उसकी तरफ देखकर अवाक् रह गया। उसकी आंखों में आंसू चमक रहे थे।

"डु यू रिमेम्बर माइ नटराज, सूर्य ? तुम्हें मेरा नटराज याद है ?"

मैंने अर्थपूर्ण लहजे में उत्तर दिया, "अलका, तुम बुरी तरह हार गयीं। तुम तो मुझे पहचान भी न पायीं। हालांकि मुझे तुम्हारी हर बात अक्षर-अक्षर याद है। तुम्हारी सफेद ड्रेस, गीत, बातें, तांबे का वह नटराज…!"

"लेकिन जानते हो सूर्य ! आई वाज राइट ! उस दिन मैंने तुमसे कहा था, बिल्कुल सच हो गया। सचमुच मेरे नटराज का खोना भयंकर अपशकुन था। जिस रात मेरा नटराज गुम हो गया उसी रात तो…!"

"क्या बात है ?"

"चलो, मेरे फ्लैट में चलो ! सब बताऊंगी !"

"रहने दो अलका ! उस दिन भी उतनी दूर नहीं जा पाया था, अगर आज भी न जाऊं तो क्या फर्क पड़ता है ? बस यहीं तक ठीक है !"

"उस दिन मेरे साथ न जाकर तुमने भयंकर अन्याय किया था, सूर्य ! अगर तुम साथ चले गये होते तो मुमकिन है, मैं बच जाती ! लेकिन छोड़ो, आज हम लोग उस दिन से बहुत-बहुत आगे निकल आये हैं। अब तुम्हारी कोई क्षति, कोई नुकसान नहीं होगा, सूर्य ! लेकिन…

चलो, रहने ही दो ! जब तुम नहीं जाना चाहते, तो न जाओ, आओ मैदान का एक राउंड लगाकर, मैं तुम्हें चौरंगी में छोड़ दूंगी !"

"चलो, आज तुम्हारा फ्लैट देख आऊं ! तुम्हारे दौलतखाने का अता-पता रखना मेरे लिए बहुत जरूरी है !"

अलका ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने चाबी घुमाकर गाड़ी स्टार्ट की और पंख की गति से गाड़ी भगाते हुए उसने कहा, "जानते हो सूर्य, उस रात इतना कुछ घट गया था, लेकिन रात के आखिरी पहर के सपने में जाने क्यों तुम्हें ही देखा था !"

धूप बसंत के पीले पंखों की तरह सामने बिछी थी। तेज हवा। तीर-वेग की तरह भागती हुई दो-चार गाड़ियां। खुले हुए फीते की तरह सामने बिछा रास्ता।

अलका को यह फ्लैट चौधरी साहब ने दिया था। टैंगरा वाले घर और सौतेली मां के शिकंजे से निकलकर उसे न्यू-अलीपुर में प्रतिष्ठित कर दिया था। इतने सारे अहसानों के बदले में उस रात कोई बहुत बड़ी कीमत के बजाय वे एक छोटा-सा मेहनताना वसूल कर चले गये थे। अलका भी जानती थी। उसे उनके इरादों का पूर्वाभास हो गया था। नहीं, उस पर किसी तरह का पाशविक अत्याचार भी नहीं किया गया। बस, उसके नीम-राजी मन के साथ-साथ, उसकी देह भी दखल कर ली गयी थी। कभी-कभार आज भी वे अपना हक वसूलने चले आते हैं। लेकिन यह ऐसी कौन-सी बड़ी या खास बात है ?

अलका ने हंसते-हंसते बताया, "लेकिन जानते हो सूर्य, गहरी नींद में बेहोश चौधरी साहब की बगल में लेटी-लेटी उस रात मैं तुम्हारे ही सपने में खो गयी थी ! हां, अब तो सपना भी मानो मेरा पालतू बन गया है ! अभी भी किसी-किसी रात, जब मन होता है, वही सपना मुझे दुबारा छा लेता है···! जानते हो क्या सपना देखती हूं—तुमने मुझे बिस्तर से उठाकर अपनी बांहों में भर लिया है, और मुझे जाने कहां लिये जा रहे हो ! जाते-जाते तुम अपने उसी अनोखे पूर्वी बंगाल वाले उच्चारण में कुछ-कुछ कह रहे हो ! वही मजाकिया टोन ! तुम कह रहे हो, 'अरे वाह ! न जान न पहचान ! फिर भी क्या मजे में आप

मेरे पीछे लग ली हैं !'

"मैं कहती हूं, 'हां, हां लग ली हूं ! देखते नहीं, पैदल पांव चलते हुए कितना भला लग रहा है ! वहती वयार के साथ हवा के पंखों पर सवार हल्की-फुल्की चिड़िया की तरह···!' सच, ऐसा लग रहा था मानो हम किसी धीमी स्पीड वाली फिल्म के जोड़े हों ! तुमने मेरी वात के उत्तर में मेरे सारे उत्साह पर जैसे पानी फेरते हुए पूछा था—'हां, वड़े शौक से चली तो आयीं, लेकिन अंत तक चल पाओगी ? उतनी दूर ? पता है, मेरा घर तो श्याम वाजार के शशि सरकार लेन में है !' इश्श ! कित्ते-कित्ते दिनों से यह सपना मेरे अंदर दवा पड़ा था, सूर्य ! जाने कित्ते दिनों से—!

"रात के उस अंतिम प्रहर में उस मुतहे चांद को देखने के लिए अपने विस्तर से उठकर मैं अकेले वरामदे में आ खड़ी हुई थी ! सपने में जैसे किसी असमंजस से जूझते हुए मर्द का यानी तुम्हारा हाथ थामना ! हाथों में हाथ डाले उस वहती हुई हवा के साथ हवा की तरह चलते जाने का सुख···उफ ! उफ !"

अलका ने गाड़ी की स्पीड वढ़ा दी थी।

जाने क्यों मुझे अपने पर भयंकर गुस्सा आने लगा। मारे तिल-मिलाहट के मेरा गला रुंध आया। ना, अब मैं अलका या शब्द-भारती या चौधरी साहव से किसी प्रकार का संवंध नहीं रखूंगा, मैंने मन ही मन वहुत पहले ही तय कर लिया था !

मैंने रुखाई से पूछा, "अपने फ्लैट में नहीं ले चलोगी, अलका ?"

"अव ले जाकर क्या होगा, सूर्य ?" अलका ने कहा !

"सुनो, अचानक मुझे एक जरूरी काम याद आ गया है ! तुम मुझे यहीं उतार दो !"

अलका ने विना कोई उत्तर दिये गाड़ी रोक दी।

मैंने उतरकर दरवाजा वंद कर दिया।

उसकी अस्पष्ट आवाज सुनाई दी, "वाइ !"

यूं मैंने उतर जाने की वात दिल से नहीं कही थी !

उस उम्र की वातों में भला कोई संतुलन रखा जा सकता था ?

दरअसल मैंने तो महज मान दिखाने के लिए गाड़ी रोक देने की बात कही थी। लेकिन अलका ने मेरी बातें शायद सच ही मान ली थीं।

गाड़ी से उतरकर मैदान के किनारे-किनारे विक्टोरिया की तरफ जाने वाले फुटपाथ पर चलते हुए मैंने दक्षिण की तरफ रुख किया। मेरे सामने वाली चौड़ी सड़क पर क्रमशः गाड़ियां, वसें, ट्रामें आ-जा रही थीं, और दूसरी तरफ मैदान किसी समुद्र-पुष्प की तरह खिल उठा था।

हां, समुद्र-पुष्प ही था। मैंने सुना है कि समुंदर की सतह पर हैरतअंगेज खूबसूरत बड़े-बड़े फूल खिलते हैं। एक-एक फूल बिल्कुल इमारत के आकार का। रंगीन पंखुरियां। खूबसूरत फूल, मदहोश करने वाला पराग। उनके असाधारण रूप के प्रति मन वरवस ही खिंचता चला जाता है। उनके करीब जाते ही, वे फूल हमें अपने रेशमी पराग में जकड़ लेते हैं। अंदर ही अंदर इंसान का सारा रूप, रस, यौवन चूस-कर, उसे छिलके की तरह वाहर फेंक देते हैं और खुद खूबसूरत सूरत-शक्ल में खिलखिला उठते हैं।

उस वक्त मैदान पर सर्वनाशी शाम घिरने लगी थी। चारों ओर गाढ़ी-पीली धूप का पराग झर रहा था। धूप का रंग इतना गाढ़ा था कि जुवान पर उसका स्वाद महसूस किया जा सकता था। मैदान की हरी-हरी घास, वहीं सर्वनाशा केशर-पराग वन गयी थी। चारों ओर कांटों से भरा वह मैदान, किसी जादू की तरह मुझे अपनी तरफ खींच रहा था।

शाम की ऐसी कुबेला में अलका मुझे यूं अकेला क्यों छोड़ गयी?

मैं सचमुच उसका फ्लैट देखना चाहता था। लेकिन क्यों चाहता था मैं? शायद उसका फ्लैट भी कोई विशालकाय सागर-पुष्प था, जो मौका पाते ही मुझे धीरे-धीरे निगल लेता।

अलका ने आज सब कुछ वता दिया था। उसने मुझसे कुछ भी नहीं छिपाया था। कुल उन्नीस वर्ष की उम्र में, उस अजीवोगरीब शाम को उसका तांबे का नटराज गुम हो गया था। मानो वह नटराज ही उसका रक्षा-कवच था! उसका ख्याल था कि उस रात उसके नटराज के गुम

हो जाने और जिंदगी के उस आकस्मिक मोड़ में कोई खास संबंध था। खैर, अलका जैसी लड़कियां शराब के नशे में अक्सर ऐसी खामख्याली की शिकार हो जाती हैं। अलका क्या यह नहीं जानती थी कि सिर्फ उसका मुंह देखने के लिए उसे ऐसा खूबसूरत फ्लैट नहीं दिया गया है? यह सब सोचते हुए मैं हिकारत से भर उठा। थोड़ी देर बाद मैंने अपने विचारों का रुख बदल दिया।

नहीं, उन विचारों में किसी तरह की घृणा नहीं थी। मैं उसके अंधेरे फ्लैट में किसी और ही वजह से जाना चाहता था। मैं जानता था, जैसे कोई खुद मेरे कानों में फुसफुसाकर कह गया था कि अलका मेरे पतन या नुकसान का कारण कभी नहीं बनेगी। उस रात उसकी पुकार निरर्थक चली गयी, अब वह कभी मुझे यूं आवाज नहीं लगायेगी, जिसकी वजह से मैं तबाह या भ्रष्ट हो जाऊं, मैं जिस वजह से उसका फ्लैट देखना चाहता था, वह वजह भी इस शाम की तरह ही नरम, कोमल और रंगीन थी।

आश्विन की आधी रात को उस फ्लैट में सुधीन चौधरी की बगल में लेटे-लेटे, अलका ने, चांदनी में नहाते हुए मेरा ही सपना देखा था। आज भी वह मेरा ही सपना देखा करती है। क्यों भला?

अगर मैं उसके फ्लैट में जाता, तो शायद सीधे उसके बेड-रूम में जाकर उसका वह बिस्तर देखता, जहां अलका लेटी-लेटी अपनी उन्नीस वर्षीय जिंदगी की तमाम जटिलता के बावजूद, अपनी उन्नीस वर्षीय पवित्रता को पागलों की तरह ढूंढ़ती फिरती है। आज भी वह नींद में चांदनी में नहाती स्वप्न-किन्नरी-सी उठ खड़ी होती है और आकाश से झरती चांदनी को छू लेने के लिए पंख फैलाकर धीरे-धीरे आकाश की ओर उड़ जाती है।

असल में, अलका की तरह मेरा भी सपने देखने का मन हो आया था। मैं भी उस पवित्रता के केवल सपने देखना चाहता था, जो इस वास्तविक धरती पर कभी सच नहीं हो सकती, जो बूढ़े-खूसट लोगों के कलुषित हाथों भ्रष्ट तो होती है लेकिन हमें निर्मम, नीच और गुनहगार नहीं बनाती। पल-भर के लिए मेरा भी मन हो आया था कि मैं उस

कमसिन उम्र की पवित्रता ओढ़कर कम से कम सपने में ही सही, थोड़ी-सी राहत पा लूं।

शाम ने क्रमशः जोगिया रंग ओढ़ लिया था। मुझे तो अलका के फ्लैट का पता भी नहीं मालूम, वर्ना टहलते-टहलते वहीं पहुंच जाता। लेकिन जाने दो, मैं वहां नहीं गया तो क्या हो गया? दरअसल मैं वहां जाना भी नहीं चाहता। अगर सपने में शशि सरकार लेन का सूर्य किसी अलका के फ्लैट में पहुच सकता है, तो अलका भी गली-कूचे में स्थित किसी सूर्य के टूटे-फूटे फ्लैट में आ सकती है!

मैं भी घर जाकर आज रात अलका के बारे में सोचते-सोचते सो जाऊंगा। मैं भी सपनों के पांखों पर उड़ता हुआ अलका के पास जाऊंगा और उसे अपनी बांहों में भरकर, अपने शशि सरकार लेन वाले घर में उड़ाकर सीधे अपने बिस्तर पर ले जाकर खूब-खूब प्यार करूंगा।

"अरे, तुम सूर्य?"

मैंने चौंककर पीछे देखा। मैं विक्टोरिया वाले फुटपाथ पर पहुंचने के लिए रास्ता पार कर ही रहा था कि अचानक मेरी बगल में एक लंबी-चौड़ी कार आकर रुक गयी। वह शायद कोई विदेशी गाड़ी थी। वैसे मुझे गाड़ी-वाड़ी की खास पहचान भी नहीं है। गाड़ी की सीटों पर मखमल का कवर और अंदर प्रायः धंसता हुआ-सा जो आदमी बैठा था, वही गाड़ी का मालिक था। उसकी देह पर विलायती सूट था और कोट के बटनहोल में गुलाब और बगल में फूलों का एक बुके पड़ा था।

"हां! अंदर आ जा! तू नॉर्थ की तरफ जा रहा है न?"

उसके सवाल पर मैंने जोर का ठहाका लगाया, फिर झुककर गाड़ी की खिड़की की तरफ झांकते हुए कहा, "क्यों, अब क्या भानुमती का कोई नया जादू दिखाने का इरादा है?"

"नहीं, आज कोई जादू-वादू नहीं दिखाऊंगा! स्टीयरिंग आज अपने हाथ में जो नहीं है! देखता नहीं, ड्राइवर चला रहा है?"

गाड़ी की हैंडिल घुमाकर मैं अंदर बैठ गया। ताजे गुलाब की खुशबू से पूरी गाड़ी महमहा रही थी। अजब संयोग था। जिस रात सलिल मुझे छोड़कर चला गया था, अलका ने उठा लिया था। आज अलका

छोड़ गयी थी और सलिल ने आकर उठा लिया।

मैंने पूछा, "तू तो बहुत बड़ा आदमी बन गया है न, सलिल?"

"हां रे! इत्ता बड़ा आदमी बन जाऊंगा, मैंने भी नहीं सोचा था!"

"कैसे बना?"

"बीबी की किस्मत से।"

"इस वक्त इतने सारे फूल लेकर कहां जा रहा है? बीबी के पास?"

"नहीं! हैं एक भद्र महिला! उन्हीं के पास जा रहा हूं!"

"फिर वही गोरखधंधा! भइया सलिल, तूने मुझे उन्नीस साल की उम्र में स्काइस्क्रेपर का जो खेल दिखाया था, उसका असर आज इक्कीस साल की उम्र में भी नहीं गया। अब और नहीं, मेरे भाई!"

सलिल ने अनगिनत अंगूठियों वाला अपना हाथ मेरे हाथ पर रख दिया, "नहीं रे, डरने की जरूरत नहीं है। मैं सीधे घर ही जाऊंगा। हुक्म दिया है। रास्ते में, बस, ये फूल पहुंचाकर तुझे तेरे घर के पास उतारता जाऊंगा।"

गाड़ी चल पड़ी। अद्भुत बेआवाज गाड़ी। गाड़ी चल रही है या फिसल रही है, यह भी पता नहीं चल रहा था। सिर्फ इतना भर समझ में आया कि इस गाड़ी में किसी तरह का झटका नहीं लग सकता। इसमें सिर्फ एक धीमी गति-भर है। बीच-बीच में सलिल छोटे-मोटे प्रश्न भी किये जा रहा था। मेरी पढ़ाई-लिखाई, इश्क का चक्कर। पुराने यार-दोस्त की खोज-खबर। सलिल का चेहरा रूढ़ हो आया था। आंखों के नीचे हलकी-सी छाया। बातचीत में भी वह काफी संयत और गंभीर हो गया था। हालांकि मुझसे आखिर कितना बड़ा होगा? यही कोई पांच-छह साल!

मैंने कहा, "तू न···बहुत बदल गया है, सलिल! तू जाने कैसा-सा लगने लगा है?"

सलिल ने मेरी ओर देखते हुए सूखी आवाज में कहा, "अच्छा?"

"अभी जिसके लिए फूल ले जा रहा है वह क्या तेरी लेटेस्ट है?"

"चल न, तू खुद ही देख लेना।"

थोड़ी देर चुप्पी छायी रही। अचानक ट्रैफिक सिगनल पाकर गाड़ी रुक गयी। सलिल ने मुझे फुटपाथ की तरफ देखने का इशारा किया। एक लड़की बस-स्टैंड पर सिमटी-सकुचायी-सी खड़ी थी। अगल-बगल दो लफंगे लड़के उससे सटते जा रहे थे।

सलिल ने अचानक मुंह घुमाकर कहा, "स्साले ! अभी तक सब जगह यही एक किस्सा ! लड़की के हाड़-मांस की देह की खुशबू पाते ही जीभ लपलपाने लगते हैं ! बेचारी अकेली लड़की ! उसके लिए चैन की सांस लेना मुहाल ! जैसे नोंचकर खा जायेंगे !"

मैंने अचकचाकर कहा, "मामला क्या है ? तू इतना उत्तेजित क्यों हो रहा है ?"

"रमला ने भी अकेले रहना चाहा था। इसके अलावा उसका भी और कोई कसूर नहीं था।"

"यह रमला कौन है ?"

"एक लड़की ! पति शराबी और बदमाश ! एक ऑफिस में काम करती थी। पति हर महीने की पहली तारीख को ऑफिस के सामने आकर डट जाता। उसको डराता-धमकाता था कि अगर वह रुपये उसके हवाले नहीं करेगी, तो वह उसके ऑफिस में धावा बोलेगा। सबके सामने उसका झोंटा पकड़कर खींच लायेगा या सीधे उसके बॉस के कमरे में घुस जायेगा और उसके असली चाल-चलन का अच्छी तरह पर्दाफाश कर देगा। रमला मारे डर के आधी तनख्वाह उसके हाथ में रख देती। लेकिन वक्त के साथ-साथ उसके मन के अंदर एक नन्हीं-सी चाह भी जन्म लेने लगी थी। वह अलग हो जायेगी। अकेली रहेगी। जहां किसी मर्दजात की, सिगरेट या शराब की गंध तक नहीं होगी। वह अपने चारों तरफ एक चहारदीवारी बना लेगी और मर्दों से कटकर अकेली रहेगी। सो अकेली होने के लिए उसे एक और मर्द का साथ पकड़ना पड़ा जो उसके पति से भी अधिक जबरदस्त था, और जो उसे पति के अत्याचारों से बचा सकता था।"

"लेकिन भई, रमला की यह रामकहानी तुझे कहां से मालूम हुई ?"

रमला के जीवन में आने वाला वह पुरुष मैं हूं। मुझसे वह अपनी सारी बातें निष्कपट भाव से बताया करती थी।—बचपन में गुड़ियों के खेल से लेकर जवानी में मर्दों के खेल तक। मैं रमला के गाल के उस तिल से लेकर…उसकी जिंदगी की एक-एक बात जानता था। रमला जब हंसती थी, तो उसके गाल के खूबसूरत गड्ढे में उसका वह तिल भी डूब जाता था। तब वह इत्ती खूबसूरत लगती थी…।"

गाड़ी चौरंगी छोड़ चुकी थी। सलिल ने एक सिगरेट सुलगा ली। मुझे भी ऑफर करते हुए उसने कहानी का सिलसिला जारी रखा, मर्द फिर मर्द ! फिर और मर्द ! रमला की नौकरी चली गयी। दरअसल उसे आराम चाहिए था। आखिर उसका अपना भविष्य भी तो था। अब वह और कुछ नहीं करती थी, बस, छल-बल से काम लेने लगी थी। अब वह मक्कारी से रुपया बटोरना चाहती थी, ताकि वह अपने लिए एक घर खरीद सके…और अकेली रह सके। उसे एक ऐसे घर की चाह थी, जहां ऐश-ट्रे का नाम तक न हो। सिगरेट के टुकड़ों की ढेरी न हो, शराब की खाली बोतलें न हों, किसी मर्द के कपड़े या तकिये तक न हों !

लेकिन रमला की वह साध अभी तक अधूरी थी। इधर बहुत दिनों से उससे सिलसिला टूट गया था। इसी बीच उसने शराब भी शुरू कर दी। दरअसल वह सब कुछ भूल जाना चाहती थी। वह मर्दों के साथ इसलिए रहती थी कि उनसे नफरत करती थी और ये बातें उसने सिर्फ मुझे ही बतायी थीं…"

मैंने सिगरेट का धुआं उड़ाते हुए दरयाफ्त किया, "अब वह कहां रहती है ?"

"चल न ! तू खुद ही देख लेना ! ड्राइवर, रमा भाईजी के यहां…"

गली के अंदर गली। कई-कई संकरी गलियों का चक्कर लगाते हुए गाड़ी आगे बढ़ती जा रही थी। अचानक हम एक टूटे-फूटे मकान के सामने रुक गये। सामने पुलिस-वैन और एम्बुलेंस।

सलिल के उतरते ही एक पुलिस-इंस्पेक्टर ने आगे बढ़कर कहा, "आपका ही इंतजार कर रहा था।"

सलिल ने हाथ का गुलदस्ता नीचे रखकर कहा "जी, धन्यवाद !"

मैं सलिल के पीछे-पीछे उस टूटे-फूटे मकान की तीसरी मंजिल पर जा पहुंचा। सामने बड़े पुराने ढंग के फ्लैट का बड़ा-सा दरवाजा उढ़-काया हुआ था। बाहर वाले कमरे में पुराने ढंग का फर्नीचर सजा हुआ था। ड्राइंग रूम के बाद ही डाइनिंग रूम पार करके हम अंदर चले आये।

बिस्तर पर आपादमस्तक चादर से ढकी हुई एक लाश। पास ही एक पुलिस अफसर खड़ा था।

उसने कहा, "दो दिनों से मरी पड़ी रही ! हार्टफेल ! किसी ने खोज-खबर ही नहीं ली ! वो तो आज सुबह दूध वाले को शक हुआ तो पड़ोसियों ने पुलिस को खबर की ! उन लोगों ने ही बताया कि वह बहुत अकेली महिला थी ! कोई खोज-खबर लेने वाला भी नहीं था !"

सलिल ने फूलों का गुलदस्ता धीरे से महिला के पैर के पास रख दिया और भर्रायी आवाज में पूछा, "एक बार मुंह देख सकता हूं ?"

पुलिस अफसर ने धीरे से चादर हटा दी। मैं चौंक उठा। मेरा ख्याल था वह कोई जवान औरत होगी। किसी प्रौढ़ औरत का सूखा-सा चेहरा ! शांत-निरीह दो आंखें ! लंबा गठन ! यह औरत शायद हमेशा ही कुंआरी रही होगी !

सलिल सीढ़ियों से नीचे उतरा। मैं गाड़ी में फिर उसकी बगल में बैठ गया। गाड़ी फिर चल पड़ी।

सलिल ने एक लंबी उसांस भरकर कहा, "मेरे पिता के सैकड़ों प्रेम-संबंधों में से एक ये भी थीं। मुझे देखकर खुश होती थीं, इसलिए मैं इनके पास अक्सर आया करता था। मैं इन्हें बहुत प्यार करता था। ये भी मेरे आगे अपने मन की पर्त-पर्त खोलकर रख देती थीं। आखिरी दिनों में वे इतना पीने लगी थीं कि अक्सर होश ही नहीं रहता था। तनख्वाह नहीं दे पाती थीं इसीलिए नौकर-चाकर भी नहीं टिकते थे। मैंने अपने पिता की मृत्यु के बाद भी उनके रुपये बंद नहीं किये। लेकिन अब मैं छोटा-सा बच्चा नहीं रह गया था। सो, अब मेरा भी वैसा कोई खिंचाव नहीं रह गया था, इसीलिए पिछले सात-आठ सालों से मैं उनसे मिला ही नहीं। पुलिस ने

खबर दी तो आज आया हूं। सोच देखो सूर्य, दो दिनों से मरी पड़ी रही, किसी ने खोज-खबर तक नहीं ली। यही होता है न अकेलेपन का अन्जाम। ऐसी औरतों का अंत क्या ऐसा ही होता है ?"

मेरा घर नजदीक आ गया था। अचानक मेरे अंदर जाने कैसी करुण रुलाई उमड़ आयी।

मैंने सलिल की ओर घूमकर कहा, "सलिल, मुझ पर एक एहसान करोगे ?"

"क्या रे ? बोल न !" उसने भारी आवाज में कहा।

"अपनी गाड़ी को 'शब्द-भारती' के दफ्तर तक चलने को कह दो।"

"क्यों ?"

"मैं वहां से एक पता लेकर अलका नाम की एक लड़की के फ्लैट तक जाना चाहता हूं।"

"अलका ? सुधीन चौधरी ने जिसे फ्लैट दिया है ?"

"हां।"

"तो ऐसा बोल न ! हम लोग वहां जाने कितनी बार गये हैं। वहां तो अक्सर पार्टियां होती रहती हैं। चल, पहुंचाए देता हूं।"

मैं गाड़ी में एक ओर सिमटकर बैठ गया। मेरे दिमाग में विचारों का तूफान जाग उठा था। मैं सोच रहा था अलका उन पार्टियों में चाहे जितना नाचती-गाती हो, लेकिन मेरी अलका इन सबसे अलग है। ये लोग उसे बिल्कुल नहीं जानते। जैसे रमला की जिंदगी में आने वाला कोई मर्द उसे नहीं जान पाया। मेरी आंखों के आगे निचाट अकेली, बीमार और शराबी रमला देवी का दो दिनों का बासी मृत चेहरा तैर गया। रमला की जिंदगी की तरह क्या अलका भी जिंदगी में अकेले रहने की आदत डाल रही है ? सुधीन चौधरी आखिर कितने दिन टिकेंगे ? उसके बाद ? वही पुराना किस्सा। मर्द के बाद मर्द, फिर दूसरा मर्द। उतने दिन की जिंदगी है। लेकिन उसके बाद ?

नहीं, किसी दिन अलका के दूध वाले को भी उसके दो दिनों की बासी लाश की खबर देनी पड़े, ऐसा मैं कभी नहीं होने दूंगा। मैं अभी उसके पास जाऊंगा। उसके फ्लैट में जाऊंगा। मैं अलका को···

अचानक सलिल की गाड़ी बालीगंज के एक खूबसूरत फ्लैट के सामने खड़ी हो गयी। अभी हम गाड़ी से उतर ही रहे थे कि सामने एक काली ब्यूक पर नजर पड़ी।

सलिल ने बताया, "यह सुधीन चौधरी की गाड़ी है।"

अभी हमारी बात खत्म भी नहीं हुई थी कि अलका सुधीन चौधरी से बातें करती हुई नीचे उतरी। उस वक्त उसने इतना साज-शृंगार किया था कि पहचानी भी नहीं जा रही थी। दूकान से खरीदे हुए बालों का विग, शरीर पर सफेद लेसवाली रुपहली जरीदार मैक्सी। सफेद साटन के जूते और सफेद मोतियों वाला पर्स।

मेरे कदम खुद-ब-खुद आगे बढ़ गये। उसने मुझे देखकर अजीब-सी हंसी हंसते हुए हाथ हिलाकर कहा, "सूर्य, अभी तो तुम्हारे लिए मेरे पास फुरसत नहीं है। इस वक्त हम लोग एक पार्टी में 'कलकत्ता क्लब' जा रहे हैं।" वह हिस्टीरिया के मरीज की तरह खिलखिला कर हंस पड़ी।

अलका और सुधीन चौधरी गाड़ी में बैठ गये। सामने ड्राइवर बैठा था। वे दोनों पिछली सीट पर एक-दूसरे से काफी सटकर बैठे थे। हमें उनका एक-दूसरे से सटा हुआ केवल सिर ही दिखाई दे रहा था।

सलिल ने कहा, "मामला कुछ समझ में नहीं आया, सूर्य! बात क्या है?"

अपमान और मायूसी से मेरे होंठ फड़फड़ा उठे। मैंने कहा, "अचानक कैसे अजीब-अजीब ख्याल आने लगे थे। मुझे लगा था अलका भी मानो रमला जी की तरह अकेली अपने फ्लैट में मरी पड़ी होगी।"

"मरी पड़ी होगी? अलका?" सलिल ने जोर का ठहाका लगाया, "अबे, वह लड़की खुद मरने के लिए नहीं, मारने के लिए पैदा हुई है। देखा नहीं, क्या चुस्त कपड़े पहन रखे थे? इसे ही कहते हैं, कत्ल करने वाली ड्रेस।"

मैं लगभग दौड़ते हुए सलिल की गाड़ी में आ बैठा। और मानो अपने को ही सुनाते हुए बुदबुदा उठा, "भगवान। अलका के साथ अब इस जिंदगी में मेरी कभी कहीं मुलाकात न हो।"

लगभग तीन वर्ष बाद की घटना है ।

मैं एम० ए० पास करके रिसर्च के आखिरी दौर में था । बंगला-साहित्य के छात्रों में जो सब सनक होती है, जाहिर है कि मैं भी उससे अछूता नहीं था । अब मैं थोड़ा साहित्य-वाहित्य भी करने लगा था । छोटी-मोटी पत्रिका निकालता था और तमाम कॉलेजों में नौकरी के लिए दरख्वास्त भी लिखकर पोस्ट करने लगा था ।

उन्हीं दिनों की बात है । पूरे दिन नेशनल लाइब्रेरी में बिताकर घर में घुसते ही, मां के छुटके-से रसोईघर के दरवाजे पर नजर पड़ी । वहां मूढ़े पर एक लड़की बैठी हुई थी । सिर पर बालों का बड़ा-सा जूड़ा, शरीर पर हल्के रंग की प्रिंटेड साड़ी ।

मुझे देखते ही मां ने आवाज दी, "सूर्य, देख कौन आया है ।"

उस झुटपुटे में उस लड़की ने मुंह फेरे-फेरे ही पूछा, "कैसे हो सूर्य ?"

रूमा ? मैं आसमान से गिरा । यह रूमा है ? ऐसा विनम्र लहजा कोमल भंगिमा, ढीला जूड़ा और बातों का मधुर अंदाज ! कैसी असंभव-सी घटना थी न ?

मैंने बमुश्किल जवाब दिया, "बस, दुआ है ।" और मैं अपने कमरे में चला गया ।

थोड़ी देर बाद रूमा ही मेरे लिए चाय लेकर कमरे में आयी । मैंने गौर किया वह घिसट-घिसटकर चल रही थी । चाय की प्याली रखकर, जब उसने मेरी ओर सिर उठाया तो उसके बायें गाल के चोट के भद्दे-से निशान पर निगाह ठिठक गयी ।

मैंने दवे स्वर में पूछा, "यह चोट कैसी है, रूमा ?"

"कमल खन्ना के स्कूटर का एक्सीडेंट हो गया था। वह स्कूटर इतना तेज चला रहा था कि मैं प्राय: तीन-चार फीट दूर छिटककर जा गिरी थी।"

उसने अपनी साड़ी से बायां गाल ढकने की कोशिश की।

"हूंऽ—खन्ना साहब की खवर क्या है ?"

"कोई खवर नहीं।"

"मतलव ?"

"कमल अपने कारोवार के सिलसिले में हरियाना जा वसा।"

"तो तुम उसके साथ क्यों नहीं गयीं।"

उसके होठों पर एक फीकी-सी मुस्कान उभर आयी। उसने कोई जवाव नहीं दिया।

मेरे तावड़तोड़ सवालों के जवाव में आखिर उसे अपना मुंह खोलना ही पड़ा। पूरी कहानी समझ में आ गयी।

एक्सीडेंट के वाद कमल खन्ना से उसके संवंध टूट गये। नीतिश साहा और मिली दत्त शादी-ब्याह के चक्कर में फंसे विना ही साथ-साथ रहने लगे थे। दोनों प्राणी वढ़िया नौकरी करते थे। दोनों को फास्ट लाइफ पसंद थी। अत: वे दोनों आये दिन काफी मौज-मस्ती में डूबे रहते थे। कैबरे, पार्टी, शराव, ब्लू-फिल्म, फ्लोर-शो—वस, इन्हीं सवमें वे मस्त रहते थे। दोनों एक साथ ही ड्यूटी लेकर दो-एक दिन के लिए हिंदुस्तान या हिंदुस्तान के वाहर विदेशी वंदरगाहों पर तफरीह के लिए निकल जाते थे और विभिन्न होटलों में नित-नये हनीमून मनाया करते थे। इसी बीच और भी वहुत-सी घटनाएं घट गयीं। मसलन नीतिश साहा जव दिल्ली में नहीं होते थे, तो मिली दत्त औरों के साथ रंगरेलियां मनाने लगी। नीतिश साहा का भी मिली दत्त के अलावा दूसरी औरतों से चक्कर शुरू हो गया। जव-कभी एक-दूसरे के सामने एक-दूसरे का भांडा फूट जाता था तो आपस में प्रचंड कलह, मार-पीट, लात-घूंसे, झगड़े, बोतलवाजी वगैरह तक की नौवत आ जाती थी।

इतनी घटनापूर्ण, व्यस्त जिंदगी जीते हुए वे दोनों अक्सर रूमा की

खोज-खबर लेना भूल जाया करते थे। इधर रूमा के हॉस्टल की फीस, कपड़े-लत्तों का खर्च, बीमारी वगैरह की ठीक देखभाल नहीं हो पाती थी। कुछ दिनों बाद जब उसकी याद आती थी, तो उसे आमोद-प्रमोद हो-हुल्लड़ और उपहारों से लाद देते थे।

इधर करीब महीने-भर से नीतिश साहा और मिली दत्त की तरफ से कोई खोज-खबर न लिये जाने पर रूमा एक दिन होस्टल से छुट्टी लेकर मिली के यहां जा पहुंची। बेल दबाने के बाद, काफी देर तक बॉलकनी में खड़ी रही, दरवाजा नहीं खुला।

थोड़ी देर बाद दरवाजा खुल गया और खुद मिली दत्त ही बाहर निकली। और कोई वक्त तो रूमा को देखते ही 'हाय स्वीटी' कहकर उसे कसकर चिपटा लेती थी और चुंबनों की बौछार कर देती थी, लेकिन उस दिन उसने ऐसा कुछ भी नहीं किया।

रूमा को देखते ही उसकी आंखों से चिनगारियां छूटने लगीं, "क्या काम है? अब तुम कौन-सा मतलब गांठने यहां आयी हो? यहां का मधु तो खत्म हो गया। तुम्हारे उस जानवर बाप को मैंने लात मारकर बाहर निकाल दिया। और आज तुम्हें भी आगाह किए देती हूं, खबरदार, जो मेरे फ्लैट में कभी कदम रखा।" यह कहकर उसने धड़ाम से दरवाजा बंद कर लिया।

हतप्रभ रूमा उस वक्त आखिर कहां जाती? उसे तो अपने डैडी का पता भी नहीं मालूम था। जहां तक उसे खबर थी, उसके डैडी अपना फ्लैट बहुत पहले ही छोड़ चुके थे और मिली दत्त के साथ खुल्लम-खुल्ला रहने लगे थे। काफी बुद्धि दौड़ाने पर उसे अपने डैडी के दफ्तर से जो खोज-खबर मिली, उसका सारा निचोड़ यह था कि वे अब किसी दूसरी औरत के साथ रहने लगे थे। वह औरत मिली दत्त से भी अधिक खूबसूरत और मालदार थी। इस बार कोई इटालियन औरत थी।

रूमा प्राय: डेढ़-दो महीने चक्कर लगाती रही लेकिन डैडी से मुलाकात नहीं हो सकी। आखिरी खबर उसे डैडी के दोस्तों से ही मिली थी कि उसके डैडी अपनी नयी प्रेमिका को लेकर हिंदुस्तान से बहुत दूर आस्ट्रेलिया जाने वाले थे। इस बार वे भारतीय नागरिकता भी छोड़

रहे थे। एकदम से आस्ट्रेलियन नागरिक बन जाने का फैसला किया था। इधर रुपयों के अभाव में रूमा को हॉस्टल छोड़ना पड़ा। काफी तिकड़म भिड़ाने के बाद आखिरकार डैडी से मुलाकात हुई। उसके डैडी ने उसे अपने परिवार के मकान यानी अपने बड़े भाई के यहां जाने की सलाह दी।

उन्होंने अपनी तरफ से काफी उदारता दिखाते हुए यह भी बताया कि पुश्तैनी जायदाद में उनका जो हिस्सा बनता था, वह वे उसी के लिए छोड़े जा रहे हैं। इसके अलावा उसकी मां के कुछ रुपये भी उसके नाम बच रहे हैं।

रूमा अब काफी बड़ी हो चुकी थी, जितना कुछ उसे मिल रहा था, उसके अलावा और क्या चाहिए? उनके चले जाने के बाद आखिर वह किसके पास रहेगी? इससे तो कलकत्ते में रहना ही, कई दृष्टि से सुविधाजनक था। रूमा के पिता ने उसे एक बार भी अपने साथ आस्ट्रेलिया चलने को नहीं कहा।

बहरहाल, रूमा की रामकहानी जब समाप्त हुई तो मैंने अचानक ही मुंह फेरकर कहा, "यानी पुनर्मूषको भव!"

शायद वह मेरी बात सुन नहीं पायी। उसने दुबारा पूछा, "तुमने मुझे कुछ कहा, सूर्य?"

मैंने किंचित् हंसकर कहा, "अरे हां, मैं तो भूल ही गया था, तुमने तो इंगलिश मीडियम स्कूल में पढ़ाई की है, संस्कृत-वंस्कृत तुम्हारे पल्ले नहीं पड़ेगी।"

रूमा ने मेरा व्यंग्य नजरंदाज करते हुए कहा, "खैर, जो बीत गयी, सो बीत गयी। अब मैं कलकत्ते में ही रहूंगी।"

"कहां?"

"जेठ के पास—गोरा बगान बस्ती वाले घर में।"

"वैसे अब क्या सोचा है? क्या करोगी?"

"सोचती हूं बी० ए० कर ही डालूं। दिल्ली में तो सीनियर कैंब्रिज करके घर बैठ गयी थी। मां के रुपयों का भी कोई इंतजाम करना होगा। मुझे तुम्हारी सलाह की जरूरत है, सूर्य"!

उसका चेहरा सूर्यमुखी के फूल की तरह मेरी तरफ उठ आया।

मुझे उसकी बात पर हंसी आ गयी। मैं भी यह देखना चाहता था कि रूमा सब कुछ जानते-समझते हुए भी आखिर कितनी दूर तक मेरा अपमान बरदाश्त कर सकती है।

मैंने कहा, "अभी तुमने जो बात कही है, महज तुम्हारी मक्कारी है, रूमा! भला मैं तुम्हें क्या सलाह दूंगा? अभी तो मेरी नौकरी-चौकरी भी नहीं लगी। मैं ठहरा अदना-सा रिसर्च-छात्र! भला मैं रुपये-पैसे के हिसाब-किताब के बारे में क्या समझता हूं?"

रूमा तीर्थ के कौए की तरह मेरे चेहरे की तरफ टकटकी लगाए उसी तरह चुपचाप बैठी रही।

मेरा मन अजीब-सी वितृष्णा से भर उठा। मैंने चाय की चुस्की लेकर एक सिगरेट जलाते हुए कहा, "जानती हो, रूमा, आखिरी दिन भी मौसी से मेरी मुलाकात हुई थी। उनकी मौत के बाद मैंने ही लाश का इंतजाम किया। चलो, मान लिया, नीतिश साहा उनके कोई नहीं थे, लेकिन तुम तो उनकी सगी बेटी थीं न रूमा?"

रूमा ने रुआंसी आवाज में कहा, "मैं समझती नहीं थी सूर्य, तब मैं छोटी थी, मेरी बुद्धि कच्ची थी।"

"तुम्हें शर्म नहीं आती? जिस मां का तुम मुंह तक देखने नहीं आयीं, जिसका श्राद्ध तक नहीं किया, आज उसके रुपये-पैसे का हिसाब करने आयी हो?"

रूमा अचानक उठ खड़ी हुई और मेरे होठों पर पसीने की भीगी अंगुलियां रख दीं, "आगे और कुछ मत कहो सूर्य, तुम देख नहीं रहे, मुझे अपने गुनाहों की सजा मिल गयी। अच्छा, तुम ही कहो, मुझे सजा नहीं मिली? इतना बड़ा एक्सीडेंट हो गया। कमल ने मुझे धोखा दिया। मिली दत्त ने मुझे लात मारकर अपने फ्लैट से निकाल बाहर किया। सगा बाप हॉस्टल-फीस तक देने से मुकर गया और अब तो वह हिंदुस्तान में भी नहीं रहा। अब कम-से-कम तुम तो मुझे मत ठुकराओ।"

रूमा ने लगभग मेरे सीने पर अपना सिर टिका देना चाहा।

रूमा को लगभग धक्का देकर मैं दूर छिटककर खड़ा हो गया। मेरे अंदर तीखा आक्रोश और भयंकर नफरत धधक उठी। मैंने रूमा के आगे हाथ जोड़कर विरक्ति से कहा, "देखो, रूमा···मेरे सीने में आग जल रही है। मेहरबानी करके मेरी नजरों के सामने से फिलहाल दूर हो जाओ।"

रूमा धीरे से उठकर चली गयी।

रूमा के जाते ही मेरी आंखों के आगे का वर्तमान मिट गया और किसी अंधेरे गलियारे में मौसी के कमरे की आलोकित खिड़की उभर आयी। खिड़की के सींखचे से सटा हुआ मौसी का चेहरा।

"सूर्य, कम-से-कम तुम रूमा को कभी मत छोड़ना।"

और अगले दिन मेरे कदम रूमा के गोराबगान वाले नीतिश साहा के घर की ओर उठ गये थे।

उसके बाद दो साल के अंदर मेरे या रूमा के जीवन में कोई विशेष घटना नहीं घटी। हां, यह जरूर हुआ था कि मेदिनीपुर में मुझे एक लेक्चररशिप मिल गयी थी और रूमा को बी० ए० करने के बाद एक जगह क्लर्की की नौकरी मिल गयी थी। काफी जोड़-तोड़ के बाद मैंने और रूमा ने मिलकर उसके ही रुपयों से गड़िया के पास एक जमीन भी खरीद ली थी। जब मैं कलकत्ते आता था, रूमा के घर भी नियमित रूप से जाता था। अब रूमा अपने पांच चचेरे भाई-बहनों के साथ, एक ही कमरे में काफी हिलमिल कर रहना सीख गयी थी। शुरू-शुरू में रूमा के गाल पर भद्दे दाग के कारण मेरी मां ने आपत्ति जरूर उठायी, लेकिन बाद में वे भी चुप लगा गयी थीं। मुमकिन है, रूमा ने उन्हें अपनी जमा पूंजी का थोड़ा-बहुत आभास दे दिया हो, क्योंकि एक दिन मैंने खुद अपनी मां को ही यह कहते हुए सुना कि उसके गाल का यह ऐब कोई जन्मजात तो है नहीं। वह तो एक्सीडेंट के कारण बेचारी के गाल पर दाग और पैर में ऐब हो गया था। ये ऐब उसके बाल-बच्चों में हरगिज नहीं आयेंगे। मैं उनकी बातों पर मन ही मन हंस देता था। लोगों का ख्याल था हम दोनों एक-दूसरे से गहरी मुहब्बत करते थे। लेकिन असल बात तो केवल हम दोनों ही जानते थे।

हम दोनों ने आपस में एक हिसाव-किताव कर लिया था और हमारे वीच एक नपा-तुला नक्शा-भर था। भविष्य को लेकर भी काफी वुनियादी और भौतिक हिसाव-किताव लगभग निश्चित हो चुके थे। लेकिन कुल मिलाकर इसे प्रेम कतई नहीं कहा जा सकता। कभी-कभार ऐश के लिए हम दोनों रेस्तरा वगैरह में खाना-वाना खाने के लिए जाया करते थे। वीच-वीच में किसी पार्क-वार्क में सैर के लिए भी जाने लगे थे। आखिर हम दोनों जवान थे। दो-एक शारीरिक विकृतियों के अलावा रूमा कमोवेश सुंदर ही थी। उस पर से दिनोंदिन उस पर और रूप चढ़ रहा था। उसके तौर-तरीके पहनावे में भी आम वंगाली लड़कियों का-सा गृहस्थ भाव झलकने लगा था। यह भी मेरी आंखों से छिपा नहीं था कि जो-जो मुझे वहुत पसंद था, रूमा बिल्कुल उसी रंग में ढल जाने की कोशिश कर रही थी। तांत की साड़ी, माथे पर चंदन की विंदी, लंवी वेणी या ढीला जूड़ा! और मुझे यह भी मालूम था कि रूमा यह सव इसलिए नहीं करती कि वह मुझे प्यार करती है। नहीं, दरअसल वह डर गयी थी—अपने डैडी और मिली के निर्मम विश्वासघात, कमल खन्ना की ठोकर और अपनी मां की भयावह मौत से। इतने सारे हादसों ने उसे बेहद असहाय वना दिया था। अव वह मुझे नहीं खोना चाहती थी। और मैं सूर्य राय, मैंने भी अपने को एक नपे-तुले फ्रेम में फिट कर लिया था। मैं भी जानता था कि अंततोगत्वा मुझे रूमा से ही व्याह करना होगा। हम दोनों के किफायत के पैसों से, रूमा की जमीन पर एक घर वनना था ताकि वुढ़ापा आने पर हम दोनों जरा आराम से रह सकें या घूम सकें। वीमारी-आरामी का खर्च, मौत के वाद दाह-संस्कार इन सवके लिए थोड़ा-बहुत बेंक-वैलेंस और इसके अलावा अपनी एक-दो भावी संतानों के लिए थोड़ी-बहुत विरासत!

जिंदगी के बारे में इस तरह के कुछ नपे-तुले निश्चित फैसले लेने के बाद, जब मैं अपनी पुरानी छटपटाहट से रिहाई पाने लगा था, ठीक उन्हीं दिनों अलका से मेरी तीसरी मुलाकात हुई थी।

हम दोनों हठात् कोणार्क में मिल गये थे।

अपने कॉलेज के एक उड़िया मित्र सौभाग्य कुमार मिश्र के आमंत्रण पर मैं कटक गया था। कुछ दिनों कटक में गुजारने के बाद मैं पुरी चला आया था। पुरी से कोणार्क। सौभाग्य ने ठहरा कवि ! कोणार्क के बारे में उसने ढेरों कहानियां और तथ्यपूर्ण बातें बतायीं।

उसने सलाह दी कि कोणार्क देखने के लिए किसी कंडेक्टेड-टूर में जाने के बजाय हाथ में कुछ समय लेकर जाना बेहतर है। उसी ने मेरे लिए वहां के एक रेस्ट-हाउस में सारा इंतजाम करा दिया। अतः पुरी से कोणार्क आने के बाद मैं पूरे दिन मंदिर और उसके आस-पास की जगहें घूमने के बाद, शाम को रेस्ट-हाउस में लौट आया।

पूरा दिन कोणार्क का मंदिर देखने में लग गया। खाना-पीना भी बुरा नहीं था। रेस्ट-हाउस मंदिर के बिल्कुल करीब था। पूरे दिन भर की सुखद थकान के बाद, मैं रेस्ट-हाउस के बरामदे में बेंत की आराम कुर्सी पर बैठा आंखें बंद किये, सिगरेट का कश लगा रहा था। मेरी बंद आंखों के आगे, रह-रहकर कोणार्क की वह प्राचीन प्रस्तर-प्रतिमा तैर जाती थी। मंदिर के शिखर के आस-पास खुदी हुई देवकन्याओं की सुपुष्ट मुद्राएं याद आ रही थीं। मैंने गुंबद पर चढ़कर देखी थी दर्शकों की अपार भीड़। गेरुवा मिट्टी पर घूमते हुए लोग, रंगीन मौसम के खिले हुए फूल-से जान पड़ते थे।

अचानक एक स्टेशन-वैगन ने तेजी से हॉर्न बजाते हुए बड़ी स्पीड में टर्न लिया और सीधे रेस्ट-हाउस के सामने एक धचके के साथ रुक गयी। ड्राइवर के दरवाजा खोलते ही जीन्स और कमीज में एक छरहरी-

सी लड़की बाहर निकल आयी। हाथों में सांभर के चमड़े का कीमती पंखनुमा टोप। टोप पर पंखों का बना हुआ गुलाबों का गुच्छा। मैंने उसे देखते ही एक बारगी पहचान लिया। सुबह टूरिस्टों की भीड़ में वह लड़की भी शामिल थी। मैंने उसे बहुत ऊंचाई से देखा था। वह सबसे अमीर टोली के रंग-बिरंगे दर्शकों के साथ आयी थी।

गाड़ी से उतरकर उसने केयर टेकर को एक चिट दिखायी। चिट देखते ही, केयर टेकर हड़बड़ा गया और उसने एक बड़ा कमरा खोल दिया। बत्तियां जल उठीं। शायद वह उसके खाने-पीने के इंतजाम के बारे में पूछ रहा था। लड़की ने सिर हिलाकर मना कर दिया। ड्राइवर ने कई कीमती अटैची और बैग लाकर कमरे के अंदर रख दिए। वह अपनी मेम साहब से आज्ञा लेकर अपने रहने का इंतजाम करने चला गया। मेरे अंधेरे या सुख-शांति में कोई विशेष बाधा नहीं पड़ी। वह लड़की शायद बहुत थकी हुई थी। कमरे का दरवाजा बंद होते ही उसने रोशनी भी बुझा दी थी।

रात खाना-पीना निपटाकर अपने बिस्तर पर अलसाए-से लेटे-लेटे मैंने रूमा को एक संक्षिप्त-सा खत लिखा। उस खत में मैंने प्रति माह जमा होने वाले बीमा-प्रीमियम के हिसाब और गड़िया की जमीन पर घर के नक्शे के बारे में राय जाहिर की थी। खत समाप्त करके, अभ्यस्त हाथ से बत्ती बुझाकर मेरे चुपचाप लेटते ही समूचे तन-बदन में अजीब-सी सिहरन दौड़ गयी।

शरद की शुरुआत थी। यह समय ऐसा होता है, जब टपकती हुई शिशिर-बूंदें और भरती हुई चांदनी मन को बेवजह उदास कर जाती है।

सोते-सोते मुझे अचानक ख्याल आया कि कोणार्क का वह विशाल, कालजयी परित्यक्त मंदिर मेरे कितने करीब है। उसकी तुलना में कोणार्क के रास्तों के दोनों किनारों पर बसे हुए भोजनालय, रेस्तरां और अंग्रेजी होटल कैसे बेमेल लगते हैं। खिड़की के सींखचें काटकर बाहर की प्रेतग्रस्त चांदनी कमरे के अंदर घुस आयी थी। कच्ची नींद में झींगुर की झिनझिनाहट के अलावा और कोई आवाज नहीं सुनाई दे रही थी। रात किसी मखमली कंघी की तरह अपने लंबे-लंबे दांतों से टीसती हुई

देह को हौले-हौले सहलाती रही और उन काले-काले दरवाजों पर दिन-भर के तमाम दृश्य एक-एक करके उभरते रहे—लोभी यक्ष का विशाल मुंड, प्रस्तर पर अंकित सर्पाकार जीव और दूसरी आकृतियां, कमल-दल पर खुदे हुए विभिन्न कामुक आकार। सूर्य-मंदिर के विशाल-चक्र मानो मेरे अंदर अनवरत घूम रहे थे। गहरी नींद में डूबा हुआ मैं उस आश्चर्य-जनक रथ पर सवार दूर···वहुत दूर उड़ा जा रहा था।

सुवह दरवाजा खोलकर वाहर निकलते ही अलका से मुठभेड़ हो गयी।

"अरे···सूर्य···तुम ?"

सचमुच, मुझे वहुत पहले ही समझ जाना चाहिए था कि वह अलका ही है। वर्ना एक ड्राइवर के भरोसे एक जवान लड़की यूं अकेले इतनी दूर आने को तैयार हो सकती थी ?

मुझे देखते ही उसने अपनी दोनों बांहें फैला दीं और मेरा हाथ थामकर कहा, "ओह, सूर्य, कित्ते दिनों वाद···?"

मैंने भी मुस्कराकर सिर हिलाया। अलका काफी दुवली, छरहरी लेकिन कहीं से वेहद तीखी-तीखी हो आयी थी। कुछ साल पहले उसके तीक्ष्ण-वौद्धिक और प्रतिभावान चेहरे पर स्निग्धता और सौकुमार्य की छाया झलकती थी। अव कमर और वांह पर अतिरिक्त चर्वी की पर्तें चढ़ जाने के वावजूद, उसका अंग-अंग स्टील की तरह सख्त हो आया था। उसका रंग-रूप और निखर आया था।

वह सचमुच पहले से अधिक खूबसूरत और कीमती हो उठी थी। शतरंज के काले-सफेद चारखानों की तरह अलका ने लाल-काले-सफेद खानोंवाली कटकी साड़ी पहनी थी। साड़ी काफी कीमती लग रही थी। मैंने कटक में इसका दाम पता किया था। वैसी ही एक साड़ी खरीदना चाहता था, लेकिन दाम सुनकर मेरे इरादे पस्त हो गये थे।

दरअसल मैंने और रूमा ने अपने पहनने के कपड़े-लत्तों की कीमतें तक तय कर ली थीं। अलका ने काला चश्मा निकालकर आंखों पर चढ़ाते हुए पूछा, "मंदिर नहीं चलोगे, सूर्य ?"

"इतनी सुवह-सुवह ?"

अलका ने हाथ के टोप को सिर पर रखते हुए कहा, "असल बात यह है सूर्य, कि मेरी प्यास अभी नहीं बुझी।"

"कैसी प्यास ?"

अलका ने मेरे करीब आकर मेरे कानों में फुसफुसाते हुए कहा, "यकीन मानो, कोणार्क मुझे खींच रहा है। मुझे तो कल ही अपनी टोली के साथ पुरी वापस लौट जाना था, लेकिन मेरे सिर पर जाने कौन-सा भूत सवार हो गया, मैंने सफर का इरादा छोड़ दिया। मुझे लौटना ही पड़ा और मुझे नहीं मालूम सूर्य, सचमुच मुझे नहीं मालूम···आज, कल, परसों···मालूम नहीं कब तक···कब तक···मैं यह हैरतंगेज मंदिर की तरफ टकटकी बांधे देखती रहूंगी ! जाने कब बुझेगी मेरे देखने की साध !"

मैं अलका की शुभ्र-सावनी आभा से धधकती हुई चंचल पुतलियां निहारता रहा। उसके भीतर एक तीखी बेचैनी भर गयी थी। वह मानो बुखार की बेहोशी में थर-थर कांप रही थी।

अलका ने फिर कहा, "क्या हुआ ? तैयार हो जाओ ! मंदिर देखने नहीं चलोगे ?"

मैंने हंसकर कहा, "कहीं ! कल देख चुका ! आज मैं वापस जा रहा हूं !"

अलका ने मेरे दोनों हाथ थामते हुए कहा, "नहीं, प्लीज ! नहीं ! बस, आज भर रुक जाओ ! कल अगर मैं लौटी, तो तुम मेरे साथ ही लौट चलना और अगर कल भी मेरा लौटने को मन नहीं हुआ तो तुम जहां चाहोगे, मेरा ड्राइवर तुम्हें छोड़ आयेगा।"

मुझसे कोई जवाब देते नहीं बना। अलका को यह बात हरगिज नहीं बतायी जा सकती कि लंबी लाइन में खुद खड़े होकर, मैंने अपने लिए सबसे निचले क्लास का टिकट बुक कराया है। और कल ही मुझे कलकत्ते के लिए रवाना होना है। टिकट कैंसिल करने का मतलब है, मेरे हिसाब-किताब में भयंकर गड़बड़ी।

लेकिन अलका अपनी बात कहने के बाद वहां रुकी नहीं। वह बरामदा पार करके नीचे उतर गयी। उसने वहीं से आवाज देते हुए कहा,

"जल्दी करो ! मंदिर आ जाओ ! झटपट शेव करके, नहा डालो, और चले आओ !"

सुबह की ठंडी हवा में मोजे वगैरह पहने रहने के बावजूद मेरे तन-वदन में ठंड के मारे झुरझुरी फैल गयी। मेरे अंदर अनजाने में ही मानो किसी उत्सव के घंटे बज उठे।

मैंने शेव करके चाय पी और नहा-धोकर धोती-कुर्ता पहनकर बाहर निकल आया।

सुबह की सुनहली रोशनी को मानो आकाश की तरफ सिर उठाये खड़े रहस्य-मंदिर-कोणार्क से कोई सरोकार न हो।

अंदर मंदिर में अभी टूरिस्ट या दर्शनार्थियों की भीड़ नहीं जुड़ी थी। बस, दो-चार लोग बंटे-बिखरे से इधर-उधर घूम रहे थे। मंदिर के लंबे-चौड़े आंगन के बाद मैंने, मुख्य द्वार पार किया और अलका के सामने जा खड़ा हुआ।

हथेलियों जैसे लंबे-पतले आकार के पत्थर। पत्थरों पर खुदी हुई कतार-दर-कतार नृत्य मुद्राएं। अलका ने उनकी तरफ इशारा करते हुए कहा, "एक मजेदार चीज देखोगे, सूर्य ? तुम इन मूर्तियों को दाहिनी ओर से देखना शुरू करो और बिलकुल बायें छोर तक देखते चले जाओ ···।"

मेरी आंखें जंग खायी, प्रकृति के नख-क्षतों से आहत दीवारों पर अंकित परियों की नृत्य-भंगिमाओं पर जा लगीं। अलका के निर्देशानुसार मेरी निगाह दाहिने से बायीं तरफ फिसलती रही। मेरी आंखों के आगे किसी नर्तकी के अंग-प्रत्यंगों में उमड़ी हुई नृत्य-मुद्राएं जीवंत हो उठीं। पूरा का पूरा ओडिसी नृत्य साकार हो उठा। हालांकि ये मुद्राएं मैं कल भी कई बार देख चुका था। लेकिन यह दृश्य मेरी आंखों में बिलकुल नया था। मुमकिन है कल उन्हें देखकर भी मुझे देखना न आया हो। खैर, पहले ऐसा गाइड भी तो नहीं मिला था, जिसके पास सदियों पुराने इस मंदिर के रहस्य-संकेतों की चाबी सुरक्षित हो।

अलका ने सिर झटककर दुबारा कहा, "जानते हो सूर्य, इस मंदिर में कभी किसी दिन भी पूजा नहीं हुई!"

मेरी अवाक् आंखें अलका की तरफ उठ गयीं।

"क्यों ?"

अलका अजीबोगरीब आंखों से उस मंदिर को निहार रही थी मैंने भी अलका की दृष्टि का अनुसरण करते हुए मंदिर की तरफ देखा। दूर समतल धरती से किंचित् नीचे एक मंदिर !

अलका ने उंगली से इशारा करते हुए कहा, "देखो सूर्य, वोऽ रहा··· छोटा वाला मंदिर ! उसके बाद मंझला !"

मैंने चकित होकर पूछा, "उस बीच वाले मंदिर को मंझला क्यों कह रही हो ?"

अलका हंस पड़ी, "मेरे पास इस पूरे मंदिर की एक तस्वीर है, तुम्हें दिखाऊंगी ! यह जो मंदिर तुम देख रहे हो न, इसकी बगल में ऊंचे गुंबद वाला एक और मंदिर भी था ! सूर्यदेव का असली मंदिर ! मैंने एक विदेशी चित्रकार के बनाए हुए चित्र में उसका टूटा हुआ हिस्सा-भर देखा था। लगता है दो-ढाई सौ साल पहले किसी भयंकर आंधी-तूफान की चपेट में आकर वह भी गिर पड़ा होगा !"

मैं अलका के चेहरे पर ही मानो असली घटना पढ़ लेने की कोशिश कर रहा था। उसकी आंखों की हरी-शुभ्र पुतलियां किसी अद्‌भुत सुख से चमक रही थीं।

मैंने कहा, "तुम तो बिलकुल रिसर्च वालों की तरह इतिहास बयान करने लगीं।"

"हां, वही तो मैं बताना चाहती हूं सूर्य ! पुरी आकर मैंने कुछ किताबें भी इकट्‌ठी कीं ! कोणार्क के बारे में जहां जो लिखा मिला, अक्षर-अक्षर पढ़ डाला। सच तो यह है कि कोणार्क का यह मंदिर भी, पुरी के मंदिर जैसा ही था ! यानी तीन-तीन मंदिरों को मिलाकर··· एक पूरा-समूचा मंदिर !"

"अच्छा उसके बाद क्या हुआ ?"

"उसके बाद सुना है कि किसी भारी-वजनी चुंबक पर प्रतिमा के संतुलन का आधार रखा गया। वह भारी-भरकम चुंबक लोहे के विशाल जहाजों को भी खींच लेता था। उसकी वजह से एक बार एक पुर्तगाली

जहाज डूब गया। सो, क्रोधित पुर्तगाली विशालकाय युद्ध-पोत लेकर पहुंचे और गोलों की तावड़तोड़ बौछारों ने चुंबक को हिला दिया और साथ ही मुख्य मंदिर का एक हिस्सा भी धंस गया!"

मैं अलका के साथ-साथ चलता हुआ, उस हौजनुमा टूटे-फूटे मंदिर के पिछले हिस्से में पहुंच गया और बचे-खुचे अवशेष चुनने में उसका साझीदार बन गया।

अलका हंस दी, "एइ, सूर्य, तुम कुछ बोल नहीं रहे हो?"

"क्या बोलूं?"

"क्यों? पूछो न, उसके बाद!" अलका ने बातों की कड़ी फिर उठा ली, "ऐसा लगता है, उसके बाद यह समूचा मंदिर अपने गुंबद-समेत, रेत के ढेर में दब गया होगा। सदियों बाद गुंबद का चक्र दिखाई पड़ा होगा। उसके बाद खुदाई करके इस मंदिर को रेत में से निकाला गया। तुम्हें 'अर्क' का अर्थ मालूम है? दरअसल यह मंदिर सूर्य का रथ है। तुम सूर्य के तमाम घोड़ों को नहीं देख रहे? सात घोड़ों के कुछ-कुछ हिस्से टूटकर गिर पड़े। देखो, कैसे बड़े-बड़े पहियों पर सूर्य का रथ खड़ा है।"

"............"

"अच्छा, सूर्य, तुमने इस मंदिर के सूर्य देवता को देखा है? आओ, तुम्हें दिखाऊं!"

अलका ने मेरा हाथ पकड़कर खींचा। हम वृत्ताकार मंदिर की ऊंची-नीची, संकरी सीढ़ियों का चक्कर लगाते हुए ऊपर चढ़ने लगे। अलका ने मेरा हाथ अपनी मुट्ठी में कसते हुए कहा, "एइ, जानते हो, सूर्य! तुम साथ हो न, तो मुझे चढ़ने में बहुत सुविधा हो रही है!"

"क्यों भला?"

"मुझे वर्टिगो है। ऊपर से नीचे की तरफ देखते हुए मेरा सिर चकराने लगता है।"

मोड़ घूमते ही काले-काले पत्थरों से निर्मित सूर्य-देवता की बेहद खूबसूरत तेजस्वी मूर्ति हमारे सामने थी।

"देखो सूर्य, यही हैं इस मंदिर के उपेक्षित देवता—सूर्य!"

सैंकड़ों बार देखी हुई मूर्ति को वह पागलों की तरह दुबारा देखने लगी। सचमुच देखने लायक मूर्ति थी। इससे पहले मैंने सूर्य-देवता को तस्वीरों में देखा था, लेकिन तस्वीर आखिर तस्वीर होती है···उसमें भला ऐसा विशाल रूप कहां समाता ?

अलका की दीवानगी देखकर जाने क्यों मुझे लगा कि वह अन्य टूरिस्टों की तरह कोणार्क को महज देखने ही नहीं आयी थी। अन्य पर्यटकों की तरह आना, देखना और वापस लौट जाना। तमाम दर्शनीय स्थानों की यादगारों में इसे भी शामिल कर लेना और मन के किसी कोने में गाड़ देना—ऐसी मामूली इच्छाएं अलका के मन में नहीं जागती थीं।

मैं चुपचाप बादलों की छांहभरी कुनकुनी धूप में नहाए आसमान के नीचे खड़े-खड़े अलका को निरखता-परखता रहा। धूप से बचने के लिए उसने सिर पर टोप रख लिया था। उसका एक हाथ मेरे हाथ में था। पॉपी फूलों की तरह पिघलती हुई उसके बदन की नशीली खुशबू।

"जानते हो सूर्य, उस टूटे-फूटे मंदिर से सूर्य-देवता का जीर्णोद्धार करके, यहां स्थापित किया गया है। देख रहे हो कलापूर्ण, महीन नक्काशी की गयी है। उफ ! लगता है, जैसे अभी-अभी उनकी पलकों में हरकत होगी, नथुने फड़क उठेंगे, होंठ हिलाकर वे मुझे आवाज देंगे, तुम आ गयीं ?"

"सचमुच कैसी महीन कारीगरी है, अलका ! बालों और झीनी धोती की तहों की एक-एक पर्त तक बिलकुल स्पष्ट।"

सदियों पूर्व निर्मित उस असाधारण पुरुष-प्रतिमा को हम मुग्ध-भाव से देखते रहे। अचानक बरसात शुरू हो गयी। हम ऊपर खड़े-खड़े देखते रहे। नीचे दौड़ते-भागते दर्शक। सब के सब पेड़ों के नीचे, खंडहरों या खोहों की पनाह में जा खड़े हुए। सुर्ख-लाल मिट्टी से मानो खून की धार बह निकली। मैं और अलका भी उस जीर्ण, छतहीन मंदिर की एक संकरी चौकोर खोह में स्थित सूर्य-देवता के अगल-बगल जा खड़े हुए। सूर्य-देवता के माथे पर छांह किये हुए पत्थर का छोटा-सा

टुकड़ा। उस छांह में सिर छुपाने के बावजूद, हमारी देह पूरी तरह भीग गयी थी। हठात् हम दोनों के तन-मन भी जाग उठे। आवेग और उच्छ्वास से हमारे दिल की धड़कनें तेज हो उठीं। हमारे बीच खड़ा था पत्थर का देवता। बेहद खूबसूरत—लेकिन अपूजित।

अलका ने बारिश के स्वर से स्वर मिलाते हुए कहा, "क्या हुआ सूर्य ? कोई बात नहीं करोगे ?" अलका हंस पड़ी, "जानते हो सूर्य, सिर्फ इस सूर्य-मंदिर को देखने के लिए मैंने अपने अति व्यस्त कार्यक्रम में कटौती कर डाली और इतनी दूर…बंबई से भागती चली आयी, क्योंकि यह सूर्य-मंदिर मुझे बुरी तरह खींच रहा था।"

मेरे मुंह से अचानक ही हैरतभरी आवाज निकली, "अरे !"

"हां, यकीन मानो सूर्य, मुझे जाने क्या हो गया ? हिप्पियों का एक दल कोणार्क देखने आ रहा था। उन लोगों से गोआ के तट पर अचानक मुलाकात हुई। कोणार्क के बारे में बताते हुए वे लोग अजीब भावावेग से भर उठे थे। उसके बाद कोणार्क के बारे में मैंने छोटी-सी एक किताब भी पढ़ी।

"लेकिन सचमुच का कोणार्क उन सबसे कितना अलग, कितना भिन्न है, इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता।"

"अच्छा अलका, तुम्हारा टोप देखकर मुझे ख्याल आ रहा है कि तुम तो कल भी कोणार्क आयी थीं, काफी घूमी-फिरीं भी। तुम्हारे साथ और भी कई औरत-मर्द थे। वे लोग कहां गए ?"

"असल में महाराष्ट्रियन लोगों का एक दल अपने संगी-साथियों के साथ टूर पर निकला था। वे लोग पुरी, भुवनेश्वर, कोणार्क, चिल्का वगैरह की सैर को निकले थे। अंत में गोपालपुर में कुछेक दिन आराम करके, वे लोग वापस लौट जाने वाले हैं। लेकिन मैं अब और कहीं नहीं जाऊंगी। अब कहीं घूमने का मन ही नहीं रह गया। सीधे बंबई लौट जाऊंगी। यहां से भुवनेश्वर…और वहां से प्लेन लेकर बंबई !"

"तुम अब बंबई रहने लगी हो ?"

"हां, अब पूरी तौर पर बस गयी हूं ! वहां मैंने अपना निजी पब्लिसिटी-फर्म खोला है। मैं ही उसकी सर्वेसर्वा हूं। अब तो चौधरी

विजनेस !"

मैंने हंसकर कहा, "यानी आखिरकार चौधरी
गया !"

"चौधरी अव सती वन गया है। यानी वुढ़ा
जो हाल होता है। अव वह अपनी वीवी के पास
जवान लड़कियों के सामने अपने वुढ़ापे या नामर्दी
होना पड़े। मेरे पास भी काफी सारे रुपये जमा
विजनेस कनेक्शन भी थे। वस, इतनी-सी पूंजी के
जा वसी। अव तो काफी लंबा-चौड़ा विजनेस, र
मेंटरी और कर्मशियल फिल्मों में भी नियमित रूप
हूं। अव मेरे भाई-वहन भी पढ़-लिखकर अच्छी-अच
ष्ठित हो गये हैं। कलकत्ते में एक वड़ा-सा फ्लैट
ताकि अपने फ्लैट का किराया चुकाकर भी वापी औ
जाये। इसके अलावा अपनी दोनों छोटी वहनों के लि
भी खोल दिया है। उसमें प्रिंटेड साड़ियों और हिंदुस
जगहों की वे चीजें और पोशाकें वेची जाती हैं, जो अ
से नहीं मिलतीं !"

अलका वास्तविकता से दूर किन्हीं सपनों की

"जीर्ण मंदिर की सवसे ऊंची गुंवद तक जा
रहा है, सूर्य ! उन देवकन्याओं को खूव नजदीक
हो रही है !"

"लेकिन तुम्हें तो वर्टिगो है न ?"

"हां, ऊंचाई पर चढ़ते हुए मुझे जाने कैसा
एकदम से नीचे छलांग लगाने की इच्छा होती है।
वहुत ऊंचे···वहुत और ऊंचे···वहुत ऊंचे चढ़ने का

मैं और अलका उस टूटे-फूटे मंदिर की खडु-
हुए विखरे हुए अवशेषों में घूमते रहे। हालांकि
मुख्य मंदिर से दूसरे नंवर पर थी, लेकिन वहां जा
कर्जन ने जव इस मंदिर की मरम्मत करायी थी,

पत्थर भरकर सारे दरवाजे-खिड़कियां बंद करा दिये थे, ताकि मंदिर गिर न पड़े। हम दोनों मंदिर के गुंवद की तरफ चढ़ते जा रहे थे। कतार-दर-क़तार देवांगनाएं !

पत्थर की आंखें जड़ी मूरतें, कंधों तक ढलके हुए जूड़े, छातियों के कृत्रिम उभार, मांसल जांघें, पतली कमर। वर्ष के वाद वर्ष, शताब्दी पर शताब्दी ये देवकन्याएं कुदरत की निर्ममता के वदनुमा दाग लिये, कोणार्क की चहारदीवारी घेरे वदरंग खड़ी थीं। जाने कितने युगों पहले किसी ओडिसी सुंदरी को मॉडल वनाकर ऐसी अतुलनीय, मोहक मूर्तियां निर्मित की गयी होंगी। अलकापुरी की नृत्यांगनाएं स्वर्ग के देवताओं के सामने भी अपना नाच नहीं भूलीं। मानो इतने युगों वाद आज भी किसी पल उनके पत्थर के अंग-प्रत्यंगों में हरकत होने लगेगी। अब तो कुदरत के नख-क्षत और काई के निशान भी किसी पल झर सकते हैं।

अलका एक मूर्ति की जांघों पर हाथ रखकर खड़ी हो गयी और अपनी दूसरी हथेली में मेरा हाथ कसते हुए कहा, "सूर्य, हम कहीं स्वर्ग में तो नहीं आ पड़े ?"

मेरे होठों पर एक फीकी-सी मुस्कान तिर आयी। हमारे माथे के ऊपर आकाश फिर नीला होने लगा था। मंदिर की ढलानों पर काई जम गयी थी। अपार्थिव पत्थरों से गढ़ी हुई नारी-देहों के बीच खड़ा-खड़ा मैं अलका की वातें सुन रहा था।

"जानते हो सूर्य, एक छोटा-सा वच्चा था। वह अपने पिता को खोजने निकला। अपने पिता को उसने कभी देखा भी नहीं था। अपनी मां की जुवानी, उसे वस, इतना ही मालूम हो सका था कि उसका पिता किसी चंद्रभागा नदी के तट पर कोई विशाल मंदिर बना रहा है। खोजते-खोजते एक दिन वह अपने पिता के पास पहुंच गया। पिता से मुलाकात भी हो गयी। वहां मंदिर के निर्माण में लगे हुए तमाम शिल्पी जहां एक विशाल चुंबक को विठाने में असफल साबित हुए, शिल्पी के उस नन्हे वेटे ने सवको पीछे छोड़कर, उस चुंवक को ठीक-ठीक जगह पर फिट कर दिया। वह विशाल मंदिर जो अब धंस चुका है, उसका सारा बोझ यह चुंबक ही संभाले था। पत्थर की डिविया में प्राण-

भंवरे की तरह। उस लड़के की कुशल कारीगरी की वजह से वाकी शिल्पियों में असंतोष फैल गया। अगर कहीं राजा को पता चल जाये कि इस बित्ते-भर लड़के ने जो चमत्कार कर दिखाया है, वह बड़े-बड़े शिल्पी भी नहीं कर पाये, तो जाने क्या हो? जब यह बात पिता की खोज में आये हुए उस छोटे बालक को पता चली तो दुख और क्षोभ के मारे उसने चंद्रभागा नदी में कूदकर आत्महत्या कर ली।"

मैं हंस पड़ा, "अरे हटो, यह बात नहीं थी! शायद उस लड़के को भी तुम्हारी तरह वर्टिगो होगा!"

अलका चुप-सी खड़ी-खड़ी सूनी आंखों से जाने क्या देख रही थी। वारिश और तेज हो आयी। हम दोनों पूरी तौर पर भीग गये थे।

अचानक अलका ने फुसफुसाते हुए कहा, "ऐसा होता है! बहुत बार होता है! बड़ों के प्रति भयंकर क्षोभ और मान दिखाने के लिए छोटे अपनी जान दे देते हैं!"

"............"

अलका ने दुबारा कहा, "जानते हो सूर्य, यह कोणार्क न, बहुत दुखी मंदिर है।"

"क्यों? दुखी क्यों?"

"दुनिया का अन्यतम खूबसूरत मंदिर! लेकिन यहां किसी दिन पूजा नहीं हुई! एक निष्पाप बालक के रक्तदान की वजह से यह मंदिर प्रतिष्ठित होने से पहले ही अपवित्र हो गया!"

मुझे नहीं मालूम उस दिन अलका रोयी थी या नहीं, क्योंकि उस दिन उसका समूचा चेहरा आकाश के आंसुओं से तर हो आया था। वारिश की अविरल बौछार मानो रुकने को ही नहीं आ रही थी।

काई ढंकी चट्टानों के सहारे नीचे उतरते हुए मुझे और अलका को वर्जिश करनी पड़ी थी। चढ़ाई आसान होती है। उस वक्त आंखें ऊपर आकाश की ओर लगी होती हैं। लेकिन उतरते हुए बार-बार नीचे की ओर नजर जाती है। जिनको चक्कर आने का मर्ज हो, उनका सिर तो भयंकर रूप से घूमने लगता है।

अलका और मैं करीब बारह बजे रेस्ट हाउस लौटे। नहाने-खाने

के बाद मैंने ही अलका को छेड़ा, "अब बोलो, इस वक्त तो कड़कती धूप है, एक बार फिर मंदिर का चक्कर लगा आते हैं ?"

अलका ने मेरी तरफ बेहद अजीब निगाहों से देखा। उसकी आंखें अधमुंदी हो आयी थीं। मैंने गौर किया, अलका ने सुर्ख लाल रंग का, पैरों तक लटकता हुआ फ्रिलदार गाउन पहना था। उसके रूखे-खुले बाल कंधों पर लोट रहे थे।

जब उसने करीब आकर कुछ कहने को मुंह खोला तो उसके मुंह से तेज भभका उठा।

उसने कहा, "नहीं, इस वक्त अब नहीं जाऊंगी, अभी सोऊंगी ! अब रात में चलेंगे सूर्य, रात में ! आज पूर्णिमा है ! तुम्हें पता है आज खूब—खू-ब चांदनी होगी !"

"रात को ? रात को मंदिर जाओगी ?"

"हां, तुम्हें नहीं मालूम ? रात के समय उस अभागे मंदिर में बांसुरी की अद्भुत तान सुनाई देती है ! दिव्य बांसुरी ! मैं जैसे सपना देख रही होऊं—वे देवकन्याएं चांदनी के उजाले में जैसे जिंदा हो उठी हों, ढोलक और खंजरी बजा रही हों···और माहौल में गूंजता हुआ बांसुरी का स्वर···! लेकिन नहीं, मैं तुम्हें नहीं ले जाऊंगी सूर्य ! अकेली ही जाऊंगी !"

"क्यों ? अचानक मुझे यूं काट देने की क्या सूझी ?"

"नहीं सूर्य, सुना है जो बांसुरी सुन लेता है, फिर जिंदा नहीं रहता !"

मैंने जोर का ठहाका लगाया।

अलका ने कहा, "तुम हंस रहे हो, सूर्य ? अभी तो तुम्हारी जिंदगी शुरू होने वाली है ! अभी तो जाने कितनी-कितनी साधें पूरी होनी हैं ! अभी तो बहुत से सुखों का मुंह देखना बाकी है ! भला तुम रात में कोणार्क देखने क्यों जाओगे, सूर्य ?"

मैं कुछ कहने जा रहा था, लेकिन अलका मेरा उत्तर सुने बिना ही अपने कमरे में चली गयी और उसने धड़ाम से दरवाजा बंद कर लिया।

मैं भी अपने कमरे में आकर लेट गया और थोड़ी देर बाद ही गहरी

नींद में वेसुध हो गया। जव नींद टूटी तो दोपहर ढल चुकी थी। अज
सी सुखद तंद्रा में कुछ देर यूं ही लेटा रहा। थोड़ी देर वाद गाड़ी पा
करने की आवाज आयी। मुझे लगा, अलका शायद जा रही है। मैं
हड़वड़ाकर दरवाजा खोला। वाहर अलका की स्टील रंग वाली स्टेश
वैगन और वगल में ड्राइवर खड़ा था।

मुझे देखते ही उसने सलाम ठोंका।

मैंने पूछा, "क्यों, तुम्हारी मेम साहव जा रही हैं?"

"जी नहीं, हुजूर, मेम साहव रेस्ट हाउस में नहीं हैं! ये लोग व
रहे थे कि वे दोपहर को ही मंदिर चली गयी थीं; अभी तक न
लौटीं!"

"अरे···!"

"मेम साहव आती ही होंगी! आप फिक्र मत कीजिए! आप क
कल चले जायेंगे साहव?"

मेरे मुंह से अनजाने ही में निकल गया, "क्या पता? अभी कु
ठीक नहीं है।" हालांकि मैंने और रूमा ने काफी हिसाव-किताव कर
के वाद टिकट कटाया था। पुरी पहुंचते ही वापसी का टिकट भी
लिया था। विलकुल दिन-तारीख मिलाकर, ताकि लौटकर कम-से-क
एक दिन आराम भी कर सकूं।

मैंने जल्दी-जल्दी शर्ट गले में डाली और मंदिर की तरफ च
पड़ा।

मुझे वहुत दूर नहीं जाता पड़ा। सामने से अलका आ रही थी
हलके-हलके कांपती हुई देह। वदन पर जीन्स और शर्ट। कंधे प
फ्लास्क।

मुझे देखते ही उसने हंसकर मेरा हाथ थाम लिया, "फिर भी आं
नहीं भरीं, सूर्य! असंभव सूर्य, असंभव! कोणार्क को इतना-इत
देखा, लेकिन मन नहीं भरा! यह एक अभिशप्त जगह है, सूर्य! मु
न, अजीव तरह से···वे-तरह खींच रहा है कोणार्क! आज तो
वापस जा रही हूं, लेकिन मैं जानती हूं, मुझे फिर···फिर! वार-वा
लौटना होगा!"

हम दोनों साथ-साथ चलते हुए रेस्ट-हाउस लौट आये।

अलका के ड्राइवर ने उसे सलाम ठोक कर, उसके हाथ में कागज में लिपटी हुई एक वोतल थमा दी।

अलका ने वोतल लेकर मुझसे कहा, "सूर्य, कल सुवह ही मैं पुरी के लिए रवाना हो रही हूं! यानी आज हमारी आखिरी रात है! चलो, मेरे कमरे में ही चलो न!"

मैं अलका के पीछे-पीछे उसके कमरे में चला आया। अलका अपने अस्त-व्यस्त विस्तर पर ही पसर गयी। मैं उसके सामने वाले डेक-चेयर पर जा बैठा। कागज खोलकर अलका ने रम की एक खूबसूरत वोतल निकाली। वेहद अभ्यस्त और सहज भाव से गिलास में थोड़ी-सी शराव उड़ेलकर, थोड़ा-सा पानी मिलाया और मेरे सामने रख दिया। वाकी वोतल उसने अपने मुंह से लगा ली। और गटागट गले में उतारकर ऊपर से थोड़ा पानी पी लिया।

उसने कहा, "सूर्य, अगर चाहो तो आधी वोतल तुम ले जा सकते हो, लेकिन ज्यादा नहीं।"

मैंने अपने गिलास में थोड़ी-सी और शराव डालते हुए कहा, "ओह नो! आइ एम नॉट टेकिंग मोर! अव मुझे नहीं चाहिए।"

"नाउ, प्लीज गो! आइ एम फीलिंग वेरी टायर्ड! बहुत थक गयी हूं! इफ यू डोंट माइंड···दरवाजा वंद करते जाना!"

मैंने अपना गिलास उठा लिया और वाहर निकलकर अलका का दरवाजा वंद कर दिया। वाहर घुप्प अंधेरा। पूर्णिमा का चांद वादलों में ढक गया था। मैं अपने कमरे में आकर विस्तर पर लेट गया और वाकी गिलास खाली करके, एक किताब पढ़ने लगा। उस रात मैंने अपना खाना भी कमरे में ही मंगा लिया। मैंने सुना अलका ने रात का खाना मना कर दिया है और सो रही है।

पता नहीं रात कितनी वीत चुकी थी। अचानक मेरी नींद टूट गयी। मुझे लगा, कोई धीमे-धीमे मेरा दरवाजा खटखटा रहा है। कुछ देर खटखटाने के बाद मैंने उठकर दरवाजा खोल दिया।

मेरे सामने शाम वाली अलका खड़ी थी। उसने कपड़े वगैरह भी

नहीं बदले थे। वही जीन्स और शर्ट। शायद वह उन्हीं कपड़ों में सो गयी थी। उसके कंधे पर जूट का एक थैला और पानी का फ्लास्क झूल रहा था। पांव में खड़ाऊं। चांदनी की रोशनी कुछ तिरछी होकर हमारी कमर से लिपट गयी थी। वैसे चांदनी बरामदे के आखिरी छोर तक फैली हुई थी।

अलका ने मेरे कानों में फुसफुसाकर कहा, "एइ सूर्य, समुंदर देखने चलोगे ?"

"समुंदर ? समुंदर कहां है ?"

अलका ने कहा, "सुना है, बहुत दूर है ! दो मील तो होगा ही ! काफी चलना होगा ! लेकिन सुना है, अद्‌भुत है वह सागर-तट ! उस तट पर कोई जाता भी नहीं। दारुण निर्जन···चलो न सूर्य, वहां तक घूम आयें !"

"इतनी रात को ?"

"हां, चलो न ! तुमसे तो बात हो ही गयी थी कि आज रात तुम मेरे साथ मंदिर चलोगे ?"

"मैं कोई जवाब नहीं दे पाया। हमने दोनों कमरों में ताला लगाकर चाबियां पांवदान के नीचे छिपा दीं और चल पड़े।

अलका मेरा हाथ थामे हुए, किंचित् मेरे सहारे-सहारे चलती रही। हम लोग करीब मील-भर निकल आये। चांदनी में नहाया हुआ, कोणार्क का भूतग्रस्त सूर्य-मंदिर काफी पीछे छूट चुका था। आकाश-भरी चांदनी और रेतों के टीले काफी करीब लगने लगे थे। बीच-बीच में झांकता हुआ झाउ-वन। पैरों तले लोटती हुई, झाउ-वृक्षों की ही नन्हीं छायाएं।

जाने कब मैंने अपने स्लीपर उतारकर हाथ में ले लिये थे। अलका ने अपने झोले से रम की बोतल निकाल ली। हम रेत के टीले पर जैसे-वैसे पसर गये और बोतल से ही गला तर करते रहे। यह कोई और ही नशा था—-बेहद तीखा।

मैं अलका की बात नहीं जानता। लेकिन मुझे लगा था, उन्मुक्तता का स्वाद शायद ऐसा ही कुछ होता होगा। एक अद्‌भुत भौतिक पूर्णिमा के चांद से बरसती हुई चांदनी। बिलकुल दूध जैसी घनी, फिर भी

कुहासे की तरह बालू के ये परित्यक्त टीले। बालू पर लहरों के साथ हहराता हुआ सागर। टीले की लहरों पर चांदनी की भरी-भरी आंख-मिचौनी। समुद्र की तेज नमकीन हवाओं में झाउ के दरख्त पागलों की तरह अपना सिर हिलाए जा रहे थे। कई-कई मीलों तक आस-पास कोई नहीं था। अलका और मैं एक-दूसरे का हाथ थामे चलते जा रहे थे। जाने वह आधी रात थी या रात का अंतिम प्रहर, हम किसी गहरी अंतरंगता के सहारे एक-दूसरे के प्रति तीखा खिचाव महसूस करते हुए, साथ-साथ चलते जा रहे थे, फिर भी अकेले।

आज भी जब मैं अपनी जिंदगी की उस अद्भुत रात की बात सोचता हूं, तो निःशब्द अपनी सारी कृतज्ञता अलका को अर्पित कर देता हूं।

हां, मुझे मुक्ति का स्वाद सबसे पहले अलका ने ही दिया था। उस रात हम लोग मानो किसी अद्भुत स्वप्न के अद्भुत माहौल में डूब गये थे। वह माहौल हमें वास्तविकता से दूर, सचमुच किसी और ही सच्चाई की तरफ खींचे लिये जा रहा था।

उस रात अलका मुझे स्वाधीनता की साकार प्रतिमा लगी थी। वह हैरतअंगेज स्वतंत्रता की मूर्ति मानो मेरे लिए मुक्ति का दीपक जलाये खड़ी हो।

अलका के फूल जैसे पांव अद्भुत ताल-छंद में थिरकते हुए रेत पर अपने गहरे निशान अंकित करते जा रहे थे। पंक्तिबद्ध निशान। अचानक अलका मुझे छोड़कर आगे बढ़ गयी। शायद उसे ख्याल ही नहीं रहा कि उसने मुझे पीछे छोड़ दिया था। बीच-बीच में वह अपनी रफ्तार तेज कर देती थी। मैं उसके पांवों की रची हुई घाटियों में पांव रखता हुआ पीछे-पीछे चलता रहा। अलका की पीठ पसीने से भीग गयी थी। कंधे तक लहराते हुए बालों से शैंपू और पसीने की मिली-जुली गंध आ रही थी। उसके धूल-भरे चेहरे पर पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूंदें झिल-मिला आयी थीं। जाने वे पसीने की बूंदें थीं या नशीली कड़वी-तीखी रम की बूंदें।

अलका के कंधे पर फूलदार बैग झूल रहा था। अलका की चाल

बेहद अद्भुत और उन्मुक्त हो आयी थी। वह चलती जा रही थी। बीच-बीच में मुझे आवाज देकर या अपने आप से ही वह बातें भी करती जा रही थी। कभी गाने की एकाध कड़ी भी गुनगुनाने लगती थी।

सामने कहीं समुद्र जरूर था। हहराती हुई हवाएं, पानी की नमकीन गंध, उसकी आधी बातें उड़ाए लिए जा रही थी।

"सूर्य···यहां लोग आते थे, समुद्र की···! सौ साल पहले···बैल-गाड़ी पर···मेरा यह घर बड़े जतन से···इसका नामोनिशान तक मिटा देना होगा, सूर्य···!"

अलका इतनी तेज चल रही थी कि मेरे लिए उसका हाथ थामे रहना लगभग असंभव हो उठा। वह करीब-करीब दौड़ रही थी।

अचानक उसने दोनों बांहें उठाकर संकेत किया, "समुद्र! समुद्र!"

उसने अपने हाथों से लगभग मेरा हाथ खींचकर अलग कर दिया और दूर तक फैले हुए तट पर अपने पैरों की छाप छोड़ती हुई सागर की ओर दौड़ गयी। मेरे पैर वहीं जम गये थे। सामने दूर-दिगंत में चांदनी के रुपहले जल में बंदी समुद्र झिलमिला रहा था। तट की सफेद रेत मानो किसी ढलान से फिसलती हुई दिगंतव्यापी विशालकाय चित-कबरे गेहुंअन सांप के पीठ-तले जा छुपी हो। अलका ने झोला उतारकर नीचे रख दिया। रेत पर पड़ा हुआ झोला काले रंग का स्तूप जान पड़ता था। कुछ दूर जाकर अलका ने पानी का फ्लास्क भी उतारकर रख दिया।

धीरे-धीरे समूचा दृश्य मेरी आंखों के आगे धीमी गति से चलने वाला चित्र बन गया। दूर से ही देखता रहा, बरसती हुई चांदनी के प्रपात में नहाती हुई अलका कोई दिव्य जल-किन्नरी लग रही थी। धीरे-धीरे उसने अपने कमर की चौड़ी बेल्ट खोलकर अलग कर दी। अपना जीन्स भी उतार डाला। उसके बाद धीरे-धीरे अपनी बटनहीन कॉलरवाली कमीज भी खोल डाली।

मेरे सामने जो घटनाएं घटती जा रही थीं वे कहीं से भी मुझे अस्वाभाविक या नागवार नहीं लगीं। मुझे अपने अनुभव पर आश्चर्य हो रहा था। मुझे लगा, समुद्र अगर सामने बिछा हो तो चांद की जग-

मगाती हुई निओन-साइन रोशनी में अपने को ठीक इसी तरह अनावृत्त और मुक्त कर देना होता है। अपना सब कुछ इसी तरह अर्पित कर देने का मन हो आता है।

मेरी आंखों के सामने ही अलका की विलक्षण देह-यष्टि मानो सियाह सागर की खूंखार लहरों की ग्रास बनती जा रही थी। मारे उत्तेजना के मेरी नसों में खून का प्रवाह तेज हो उठा और मेरी छाती से माथे तक अजीब-सा खौफ सनसना उठा। मैंने एक बार हाथ उठाकर कुछ कहने की कोशिश भी की, "उस तरह सागर के करीब न जाओ, अलका! यह सागर बिलकुल अपरिचित है!" लेकिन मुझे लगा उसे मना करना मुझे शोभा नहीं देता। खुद मैं सागर के इतने करीब नहीं जा पाया। उसका खारा पानी छूने का ही मन नहीं हुआ। मुझसे अपने पायजामे का नाड़ा या कुर्ते का एक बटन तक नहीं खोला गया। समुद्र में नहाना तो दूर की बात थी, मैं उसके करीब तक जाने का साहस नहीं जुटा पाया।

आखिर मैं उसे किस अधिकार से मना करता? बल्कि अगर अलका समुद्र के करेंट का शिकार हो जाए या मगरमच्छ उसे अपने पैने जबड़ों में फंसाकर टुकड़े-टुकड़े कर डालें, मुझे लगेगा, अलका बिलकुल अलका जैसी मौत ही मर गयी।

मैं भी आहिस्ता-आहिस्ता वहीं रेत में धंसकर बैठ गया। नशे की शिथिलता जैसे मुझे किसी अनजाने स्वप्न के अंदर—महल में लिये जा रही थी। अलका सागर की टूटती-बिखरती फेनिल लहरों के पार जाने कहां छुपी थी और फिर जाने कितनी देर बाद सागर के काल-ग्राही मुंह से बाहर भी निकल आयी थी, मुझे पता ही नहीं चला। मैंने धुंधलायी हुई निगाहों से देखा, अलका अपने बालों को निचोड़ रही थी। अच्छा, अलका क्या भूल गयी है कि मैं भी उसके साथ हूं? क्या पता? वर्ना वह लौटकर मेरे पास क्यों नहीं आयी? वहीं सुदूर रेत पर थकी हुई-सी बिछ गयी?

काफी देर तक चांदनी में नहाती हुई अलका को देखते-देखते धीरे-धीरे मेरी भी आंखें मुंद आयीं। मुझे भी नहीं मालूम, मैं कब सो गया।

भोर होने का भी मुझे अंदाज नहीं लगा। अलका के झकझोरने पर ही मेरी नींद टूटी। मैंने आंखें खोलने की कोशिश की। शायद ठंड के कारण मेरी आंखें सूज आयी थीं और मुझे आंखें खोलने में तकलीफ हो रही थी। गला भी भारी हो आया था। अलका घुटनों के वल मेरे करीव बैठी हुई थी। उसके वालों और कपड़ों में रेत भरी हुई थी, लेकिन फिर भी वह वेहद खूवसूरत और फ्रेश लग रही थी।

"एइ, सूर्य, उठो चलो ! रेस्ट-हाउस नहीं जाना है ?"

अचानक मैं रूमा को भूल गया। मुझे अपनी फालतू-सी नौकरी भी याद नहीं रही। मैंने अलका को कंधों से घेरकर सवाल किया, "अलका तुम मुझसे व्याह करोगी ?"

यह कहते-न-कहते मैं अजीव दहशत से भर उठा। मेरा ख्याल था, अलका, मेरे इस वेसिर-पैर के सवाल पर खिलखिलाकर हंस देगी, क्योंकि उसके पास असाधारण स्वर था, विराट वैंक-वैलेंस था। वंबई में स्टुडियो। वड़े-वड़े आदमियों से उसका तरह-तरह का संवंध और लेन-देन था।

लेकिन अलका वेहद अजीव निगाहों से मुझे पढ़ने की कोशिश कर रही थी। उसकी भरी-भरी आंखें मानो सागर-तीर पर चमकती हुई भरी-पूरी सीपियां हों।

अलका का भरा-भरा स्वर वेहद अद्भुत लग रहा था, "लेकिन सूर्य, मैं तो कोणार्क के उस मंदिर की तरह हूं, जो सूर्य-पूजा से पहले ही अपवित्र हो चुका है !"

उसका हाथ पकड़कर उठने की कोशिश में मैंने हौले से उसे अपनी वांहों में कस लिया। उसके रेत भरे वालों में अपना चेहरा गड़ाकर कहा, "ना ! ना !! ना !!! तुम कहीं से भी अपवित्र नहीं हो !"

अलका और मैं रेस्ट-हाउस में लौट आये। नहा-धोकर मुंह का स्वाद बदलने के लिए हम कोणार्क के पासवाली दूकान में खाना खाने चले गये। पत्तल पर परोसी हुई मछली, भात और दाल। हम दोनों जाने कहां-कहां की बेसिर-पैर की बातों में मशगूल हो गये थे।

खाना खाकर रेस्ट-हाउस लौटते ही हम दोनों अपने-अपने कमरों में चले गये। थोड़ी देर बाद मैं अलका के कमरे के सामने जा खड़ा हुआ। दरवाजा खुला हुआ था। अलका आंखों पर बांह रखे हुए लेटी थी। उसके बदन पर इस वक्त हल्के रंग की प्रिंटेड वायल की साड़ी थी। वह अपने एक पैर के अंगूठे से दूसरे पैर का अंगूठा रगड़ रही थी।

अचानक मैंने पूछा, "अलका, यह भी कोई बात हुई?"

अलका अपनी पलकों पर से बांह हटाकर हंस दी, "कौन-सी बात?"

मैं उसके बिलकुल करीब चला आया। उसकी हल्की-फुल्की देह को अपनी बांहों में उठा लिया और उस निर्जन गलियारे से गुजरते हुए, उसे अपने कमरे में लाकर बिस्तर पर लिटा दिया।

हरी प्रिंटेड साड़ी में लिपटी हुई सद्य-स्नाता, शुद्ध-मासूम अलका उस वक्त दुनिया की सबसे पवित्र कुमारी की तरह मेरे बिस्तर पर लेटी हुई थी। मैंने अलका की हथेलियों को अपनी मुट्ठियों में कस लिया और तपती हुई दोपहर की सुनहली आभा में उसे मुग्ध आंखों से निहारने लगा।

अलका की अधमुंदी आंखों की पतली काली कोरों पर हल्की-सी नमी झिलमिला आयी। उसने रुंधी हुई आवाज में कहा, "उस दिन मैंने यही तो सपने में देखा था, सूर्य! चौधरी के फ्लैट में पहली रात को बिलकुल ऐसा ही सपना! मानो मैं बिलकुल तुम्हारे पास तुम्हारी बगल में...तुम्हारे साथ...तुम्हारा हाथ थामे हुए चलती जा रही हूं! चलती जा रही हूं! मेरे बाल, मेरा आंचल, हवा में उड़ा जा रहा है। जाने

मेरे पैर धरती पर भी पड़ रहे हैं या नहीं।"

मैंने अलका का चेहरा अपनी हथेलियों में भर लिया। मानो अचानक मैं उससे काफी बड़ा हो आया था, "अलका, बीच के तमाम दिन मैं धो-पोंछ मिटा डालूंगा। कहीं कोई दाग नहीं बच रहेगा। तुम देखना—"

"ऐसा नहीं होता, सूर्य !"

"नहीं, तुम देखना, ऐसा भी होता है !"

मेरे होंठ मानो अलका के जिस्म पर उभरे हुए दाग मिटा डालने को आतुर हो उठे।

मेरी आकुल पुकारें, उसके कुंआरे मन को, भरी-पूरी देह को जी लेने को आतुर हो उठीं। अलका के देह की तमाम बंद कलियां मेरे स्पर्श-मात्र से चिटखकर फूल बन गयीं···।

अगले दिन मैं अलका के साथ पुरी लौट आया। पुरी के रास्ते में मैंने अपनी कलकत्तेवाली टिकट जाने कहां फेंक दी। अपनी छुट्टी बढ़ाने के लिए कॉलेज दरख्वास्त भेजना भी भूल गया था। मुझे रूमा को भी खबर देने की बात याद नहीं रही। पुरी पहुंचते ही अलका के नाम जरूरी ट्रंक-कॉल आया। उसे दो दिन के अंदर बंबई पहुंचना था।

उसे प्लेन में चढ़ाने के लिए मैं भुवनेश्वर तक उसके साथ गया था। वहां भी पूरा एक दिन और रात एक-दूसरे से सटे-सटे, एक-दूसरे की छांह में गुजर गये। हम दोनों ने समूचा दिन और रात एक होटल के बंद कमरे में गुजार दिया। अगले दिन वह बंबई जानेवाली थी। हम दोनों में यही तय हुआ था कि बंबई से उसका ट्रंक-कॉल पाते ही मैं बंबई पहुंच जाऊंगा और हम दोनों ब्याह कर लेंगे।

बंबई पहुंचने के बाद, रात को ही अलका का ट्रंक-कॉल आया था। जाने कितने मीलों का व्यवधान पार करके, उसकी अद्भुत आवाज मेरे कानों से टकरा रही थी, "सूर्य, मैं कल ही विदेश जा रही हूं ! तीन महीने बाद लौटूंगी ! तुम मेदिनीपुर लौट जाओ। मैं खत में तुम्हें सारी बात लिख रही हूं !"

मैं फर्स्ट-क्लास से कलकत्ता लौट आया।

खबर मिलते ही रूमा मुझसे मिलने आयी। उस दिन हल्की-सी बूंदा-बांदी भी हुई थी। इसीलिए उसने एक सस्ती-सी बदरंग नायलन की साड़ी पहनी थी। रूमा काफी हिसाब-किताब से जो चलती थी। अतः इतना तो समझ चुका था कि हमारे प्रेमहीन दाम्पत्य जीवन में और जो कुछ चाहे न भी हो, लेकिन भौतिक सुख-स्वच्छंदता का विशेष अभाव नहीं होगा।

लेकिन मैं रूमा को झूठी बातों में बरगलाकर, उसे किसी तरह के धोखे में नहीं रखना चाहता था।

उसने जानना चाहा, "जिस दिन तुम्हारे आने की बात थी, उसी दिन क्यों नहीं आये ?"

"वहां मुझे अलका मिल गयी थी !"

रूमा ने जरा चौंककर पूछा था, "अलका कौन ?"

"तुम उसे नहीं पहचानतीं !"

"टिकट का पैसा पानी में गया न ?"

"हां, वह तो गया।"

"दूसरी टिकट भी ब्लैक में कटानी पड़ी होगी ?"

"नहीं, फर्स्ट क्लास से आया हूं !"

"अरे ! बेकार-बेकार ही फर्स्ट क्लास में ! उन रुपयों से एक जोड़ा बढ़िया बिस्तर बन सकता था न ?"

मैंने हंसकर जवाब दिया, "सच्ची, रूमा ! तुम न···वाकई बहुत सयानी औरत हो। खूब लायक पत्नी बनोगी। मैं भी सोच रहा था कि वक्त आ गया है अखबार में विज्ञापन दे ही डालूं। दरअसल, मैं तुम्हारे काबिल नहीं हूं। तुम्हारे ब्याह के लिए मैं चाहता हूं कि अपने से कोई बेहतर पात्र का पता करूं।"

रूमा के होठों की थरथराहट मेरी नजरों से छिपी नहीं रही, दुख, हताशा से उसके चेहरे का रंग फक्क पड़ गया।

उसने भर्रायी हुई आवाज में सवाल किया, "तुम क्या मुझसे मजाक कर रहे हो, सूर्य ?"

मेरा मन अजीब वितृष्णा से भर उठा। जिस दिन रूमा मुझे छोड़-

कर राजधानी एक्सप्रेस से जा रही थी, उस दिन उसे मेरी उपस्थिति कपड़े पर रेंगते हुए खटमल-सी अखर गयी थी। आज मुझे भी रूमा विलकुल वैसे ही एक अवांछित अनावश्यक बोझ-सी जान पड़ी।

मैंने दवी आवाज में रुक-रुककर कहा, "नहीं, मजाक नहीं। हम दोनों ही एक-दूसरे के काविल नहीं हैं। कल मैं मेदिनीपुर वापस जा रहा हूं। मैं चाहता हूं, अव तुम मुझे मुक्त कर दो!"

मेदिनीपुर पहुंचते ही मुझे अलका का पहला खत मिला।

"सूर्य, जव यह खत तुम्हें मिलेगा, मैं स्विट्जरलैंड में पहुंच चुकी हूंगी। वंवई पहुंचते ही एक वहुत वढ़िया कांट्रैक्ट मिला। एक विदेशी हीरोइन के लिए मेरी आवाज 'डव' की जायेगी। चूंकि वह विलायती हीरोइन है, हिंदुस्तान नहीं आयेगी। अतः अधिकांश फिल्म स्विट्जरलैंड में ही वनेगी। अतः मुझे भी वहीं रहना पड़ेगा। खैर, कोई वात नहीं। सुनो, तुमको गुपचुप एक वात वताऊं—यह मेरा आखिरी कांट्रैक्ट होगा। इस कांट्रैक्ट से ढेर-सारे रुपये मिलेंगे। और, इत्ते सारे रुपये किसके लिए और किसके भाग्य से आ रहे हैं, यह तुम्हें भी नहीं मालूम। अच्छा, ठीक है। थोड़े दिनों वाद मैं तुम्हें एक खुशखवरी दूंगी, ठीक? मेरे साथ मेरा प्राइवेट सेक्रेटरी दीक्षित भी जा रहा है। वहां से लौटते ही वह हमारा काम-काज समेटने में जुट जायेगा। उसके वाद भी जो वच रहेगा, वह दीक्षित को सौंप जाऊंगी। उसके वाद? उसके वाद···मुझे कुछ सोचना या कहना नहीं है। सारी जिम्मेदारी तुम्हारी। जैसा तुम बोलोगे या चाहोगे, वस, वही होगा। सिर्फ वही होगा! खत दो! खत दो, वर्ना यहां किसके सहारे रहूं?"

—अलका

अगले ही दिन उसका दूसरा खत भी आ पहुंचा।

"सूर्य, मैं तुम्हारी हूं।

हां, सूर्य, यह सच है। कोणार्क की उस उजली-धुली कोर में सागर-तट की रेत पर, उगते हुए गेंदनुमा सूरज की तरह, तुमने भी मुझे एक सूरज दिया था। देखो न, उस दिन के वाद से ही मेरे तमाम-तमाम दिन-रात कैसे वदल-से गये हैं। तुम्हें याद है, उस दिन

रेस्ट हाउस में दुपहरिया के समय, फिर पुरी में, फिर भुवनेश्वर में, तुमने वार-वार मुझसे क्या कहा था ? 'शरीर महज मंदिर नहीं होता, मंदिर से भी कहीं अधिक ऊंचा, अधिक विशाल होता है। वह कभी अपवित्र नहीं होता।' तुमने कहा था तुम्हारे हाथों ने जिस अलका को रचा-गढ़ा है वह अछूती है, कुंआरी है। और सूर्य, विलकुल वैसी ही कुंआरी हो गयी हूं। अछूती। असूर्यम्पश्या, बिलकुल नयी। अनोखी अलका। मैं नहीं जानती सूर्य, कि ऐसा भी होता है। कभी किसी दिन मेरी जिंदगी में भी कोई सूर्य उदित होगा, जिसकी आलोक-किरण में नहाकर मैं पोर-पोर में जगमगा उठूंगी।

सूर्य, मेरे सूर्य, इस वक्त तुम्हारी आवाज सुनने का बहुत मन हो रहा है। फोन भी बिलकुल करीब है। ओवरसीज लाइन मांगने-भर की देर है। लेकिन तुम्हारे यहां कोई फोन है क्या ?"

अक्सर दूसरे-तीसरे दिन ही अलका का अगला खत आ पहुंचता था। अद्भुत खत। काव्यमयी भाषा। वेहद अंतरंग खत।

उसका आखिरी खत सबसे अधिक प्यारा था। आकर्षक-सा रंगीन कार्ड। हलके पीले रंग का कार्ड, उस पर हरे रंग के फैल्ट-पेन से लिखा हुआ खत—

"सूर्य, हम दोनों को एक वेहद खूबसूरत, हंसमुख और प्यारा-सा, नन्हा-सा···अच्छा, बताओ तो सूर्य, बेटा होगा, बेटी ?"

—अलका !

उसके वाद दीक्षित का टेलिग्राम। मुझे एयरपोर्ट पर मिल लेने को कहा गया था। अलका सीधे कलकत्ता आ रही थी। उसके लिए पार्क-होटल में मुझे एक सूट बुक करना था।

मैं लंबी छुट्टी लेकर मेदिनीपुर से कलकत्ता चला आया। मेरे मन-प्राण सिर्फ अलका की बातों और खतों की खुशबू से भर उठे थे। पार्क-होटल का सबसे कीमती कमरा बुक करके, मैं सीधे एयरपोर्ट पहुंच गया। अलका और दीक्षित प्लेन से उतरे।

अलका के बदन पर पीले रंग का स्लैक्स और शर्ट था। वह पहले से अधिक छरहरी और तरोताजा हो आयी थी। उसके प्राइवेट सेक्रेटरी दीक्षित के साथ हम एयरपोर्ट पर ही रुके रहे। वह कलकत्ता न ठहरकर, सीधे बंबई जा रहा था। उसका प्लेन घंटे-भर बाद जाने वाला था।

हम लोग कॉफी-लाउंज में बैठे-बैठे कॉफी पीते रहे।

दीक्षित शक्ल-सूरत से बेहद खूबसूरत था। मेरी आंखें बार-बार उसके खूबसूरत चेहरे पर अटक जाती थीं। स्वस्थ, तेजस्वी और पौरुषवान चेहरा। बिलकुल तराशी हुई मूरत। रंग तो मानो फटा पड़ रहा था। वह अलका के साथ बहुत दिनों से था। इधर-उधर की बातचीत में उनकी पहली मुलाकात का किस्सा निकल आया। वह मुझे 'भाई-साहब' कहने लगा था।

फिल्मों में हीरो बनने का इरादा लेकर वह बंबई आया था। आते वक्त पिता को बिना बताए—कई सौ रुपये भी साथ लाया था। लेकिन जैसा कि अमूमन होता है, उसका चेहरा-मोहरा राजेश खन्ना से थोड़ा-बहुत मिलने के बावजूद, उसकी आवाज माइक पर बिलकुल बेकार साबित हुई। ऐसे में सड़कों की खाक छानने के अलावा और कोई चारा नहीं था। हाथ खाली होते ही, उसे होटल से भी निकाल दिया गया। खाने के भी लाले पड गये। हीरो बनने की हुड़क में उसने जो दो-चार रंग-बिरंगी शर्ट खरीदी थीं, वे भी एक-एक करके बिक गयीं। उन दिनों अलका अपनी नन्ही-मुन्नी-सी इटालियन गाड़ी में चरखी की तरह इधर-

उधर चक्कर लगाया करती थी। फिल्म इंडस्ट्री की क्लिक तोड़कर वह भी अंदर पैंठने की कोशिश कर रही थी। उन्हीं दिनों एक सस्ते से होटल में अलका और दीक्षित एक-दूसरे से टकरा गये। सुख-दुख में हमेशा साथ-साथ रहते-सहते, दोनों ने मिलकर एक लंवा-चौड़ा विजनेस खड़ा कर लिया। अत: दीक्षित अलका का वेतनयाफ्ता नौकर-भर ही नहीं था, उससे कहीं वढ़कर था। हमारी वातचीत का विषय ही यही था कि अलका अपने इतने पुराने साथी और परिवेश को छोड़कर मेरे पास आ रही है।

दीक्षित काफी उदास दिख रहा था। वैसे न वह साहित्यिक था और न हम-जुवान वंगाली, कि अपने मन की वातें सजा-संवारकर कह पाता। लेकिन मुझे उसका दर्द समझ में आ रहा था।

प्लेन में जाने से पहले उसने मेरी दोनों हथेलियां थामकर कहा, "भाई साहव, अलका आपको कितनी मुहव्वत करने लगी है, यह वात शायद वह खुद भी अच्छी तरह नहीं जानती। उसने वहुत दुख सहे हैं। अव सुख़ पर उसका हक वनता है। आप अलका का ख्याल रखिएगा।"

दीक्षित को विदा करके हम दोनों दमदम से लंवी राह तय करके, सीधे पार्क-होटल के सूट में चले आए। व्याह के लिए नोटिस वगैरह देने में तीन दिन और गुजर गये। उन तीन दिनों में मैंने और अलका ने क्या-क्या कुछ किया, उसका कोई हिसाव देना नामुमकिन है। दो मंजिली वस में अगल-वगल वैठकर हमने समूचे कलकत्ते की सैर की, शहर के अंतिम छोर पर निर्जन हरे-भरे, धान-खेतों का चक्कर लगाते रहे, घूम-घूमकर कलकत्ते की तमाम अली-गलियों का पता लगाते फिरे, सवसे कीमती होटलों में कैवरे का मजा लेते हुए डिनर खाया, यहां तक कि हम कालीघाट मंदिर भी हो आये।

उसके वाद, अर्धपरिचित दोस्तों की साक्षी में, वगैर किसी शोर-शरावे के हम दोनों का विवाह हो गया। व्याह के वाद दोस्तों की छोटी-सी पार्टी दी गयी थी। लेकिन हम लोग उनको अपना असली पता-ठिकाना नहीं वताना चाहते थे, सो हमने उन्हें एक सेकंड-ग्रेड रेस्तरां में खिला-पिलाकर छुट्टी पायी। खाने का आर्डर देकर हम एक-दूसरे में इस

कदर खो गये थे कि आसपास का कुछ होश नहीं था। अचानक केबिन का दरवाजा खुला और रूमा ने अंदर झांका।

"सू—र्य !"

मैं सकपकाहट में उठकर खड़ा हो गया। अलका भी उठी।

मैंने अलका से कहा, "तुम बैठो, अलका! मैं देखता हूं।"

मैं रूमा के साथ बाहर सड़क पर निकल आया। हम लोग उस भीड़-भरी सड़क पर एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े थे। उस वक्त उसके चेहरे पर दोपहर की धूप तप रही थी। वह अपने गाल के सूखे जख्म को छुपाने की नाकाम कोशिश कर रही थी।

रूमा ने कहा, "मैं बस से जा रही थी। तुम्हें दल-बल सहित यहां उतरते और अंदर जाते देखा तो···"

"तो तुम उतर क्यों आयीं ?"

"तुम कलकत्ते आये और मुझे खबर तक नहीं ?" रूमा ने मेरी तरफ देखा।

"खबर देकर क्या होता, रूमा ? मैंने तो तुमसे कहा ही था। तुम्हारी देखभाल की जिम्मेदारी जरूर मेरी है। मैंने मौसी को जो वचन दिया था, वह अंत तक निभाऊंगा। लेकिन मेरी अपने प्रति भी तो कुछ जिम्मेदारी है, उसका भी तो पालन करना होगा मुझे।"

रूमा ने शांत लहजे में पूछा, "यह क्या वही अलका है ?"

"हां रूमा, आज हमारा रजिस्ट्री विवाह भी हो गया।"

रूमा जैसे पत्थर हो आयी। अचानक उसने पागलों की तरह ठहाका लगाया, "लेकिन अलका का जो परिचय मैं जानती हूं, उस कारण तुम्हें बधाई तो नहीं दे पाऊंगी, सूर्य ! अच्छा, मैं चलती हूं !"

मैं लौट आया। मेज पर अलका और बाकी लोगों में जबर्दस्त अड्डा जमा हुआ था।

"आओ सूर्य, आओ! सुनो, मिस्टर कपूर क्या कह रहे हैं?"

मैंने देखा, अलका का प्रशांत चेहरा खुशी से जगमगा रहा है। कहीं रंच मात्र भी शंका के बादल नहीं थे। वह तो मेरे अपने ही मन में कहीं दुविधा का भयंकर तूफान उठ खड़ा हुआ था। हैरत है, जितने स्पष्ट भाव से रूमा को अलका के बारे में बता दिया था, अलका को रूमा के बारे में उतना खुलकर नहीं बता पाया। रूमा से बात करते हुए मेरे मन में कहीं कोई अफसोस या उसके प्रति अन्याय या अपराध-बोध नहीं था, लेकिन जाने क्यों रूमा के बारे में अलका को बताते हुए मेरी जुबान गूंगी हो आयी। डिनर के बाद हम दोनों मित्रों से विदा लेकर एक कीमती बार में जा पहुंचे। बार-हाउस के कारपेट तक इतने नरम थे कि हमारे पांव धंसे जा रहे थे। बार-रूम में लगभग अंधेरा-सा था। चारों ओर दहकते हुए सुर्ख लाल रंग की मद्धिम आभा।

हम दोनों आमने-सामने जा बैठे। अलका ने अपने लिए बार-मूड मंगाया और मैंने व्हिस्की। अलका के सुकुमार कंधों की बनावट, ग्रीवा, लहरें लेते हुए गालों की गुलाबी आभा, कंधे तक लहराते हुए बालों की नोकें—तांबे के तार की तरह भकभका उठी थीं। अंधेरे को पल-भर के लिए रोशनी दिखाते हुए अलका ने एक सिगरेट सुलगा ली। धुएं की कुंडलियां ऊपर की तरफ उठती हुई अचानक बीच में ही बिखरकर टूट जाती थीं।

"मुझे कभी यकीन नहीं होता था सूर्य, कि किसी दिन मैं इतनी-इतनी सुखी हूंगी।"

मेरी आंखों में हल्की-सी बेचैनी के साथ-साथ नमी की भी एक पर्त तिर आयी। मैंने कहा, "लेकिन मैं अपने को बहुत अपराधी महसूस कर

रहा हूं, अलका !"

"क्यों, सूर्य ?"

"तुमने मुझसे पूछा नहीं कि रूमा कौन है ?"

अलका हंसी, "इस मामले में तुम निरे वच्चे और अनाड़ी हो, सूर्य ! मैं तो इतनी दूर निकल आयी हूं, इतना कुछ जान-समझ चुकी हूं। चाहे इच्छा से हो या अनिच्छा से जिंदगी में। तुम वरदाश्त नहीं कर पाओगे। सूर्य, इसीलिए मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं कहा। आज भी नहीं कहूंगी। मेरे भी क्या कम किस्से हैं ? लेकिन सूर्य, जाने क्यों मुझे हमेशा लगा है, जिंदगी के हर पक्ष को जान लेना वेहतर है। दरअसल, यही एकमात्र विषय है, जहां हम एक-दूसरे के पिछले संदर्भों को जितना कम जाने-समझें या इस वारे में जितना कम कहें-सुनें, वेहतर है !"

फिर भी मैंने अलका को सव-कुछ वता दिया। मुझे लगा उससे कहे विना मैं मुक्त नहीं हो पाऊंगा। मौसी की वातें, उन्नीस वर्ष की उम्र में अपने पहले प्यार की वातें, रूमा के डैडी और रूमा की कलकत्ता वापसी की दास्तान—शुरू से अंत तक मैंने उसे सारा कुछ वता दिया।

सारी कहानी सुनने के वाद अलका ने एक गहरी सांस भरकर और अपने गिलास से सिप लेते हुए कहा, "हम रूमा का भी अच्छा-सा व्याह कर देंगे, सूर्य ! लेकिन आज उसकी वात रहने दो। रूमा से अधिक, मुझे तुम्हारी मौसी के लिए अफसोस होता है। अच्छा, छोड़ो ! हां, तो आज से, आखिरकार हम मैन एंड वुमेन यानी पति-पत्नी हो ही गये ! है न ?"

"और आज हमारी सुहागरात है ! है न ?"

मैं अलका के चेहरे के करीब झुक गया। उसकी लंवी-लंवी उंगलियों के वीच एक लंवी-सी सिगरेट। सिगरेट की सुनहली रिप, उसके होठों में दवी हुई था। उसकी रोशनी में उसका समूचा चेहरा तांवे की तरह तप रहा था।

अलका ने कहा, "तुमने कहा था न, सूर्य ? देखो, मैं सचमुच कुंआरी वन गयी हूं ! विल्कुल असूर्यम्पश्या, हैरत है न ? आजकल अपनी देह के भीतर तुम्हारे दिये हुए मोती को क्रमशः आकार ग्रहण

करते हुए महसूस करती हूं !"

उस दिन हम लोग आधे होश, आधे बेहोशी में कुछ जागे, कुछ सोये-से आधी रात तक एक फिटन में समूचे मैदान का चक्कर लगाते रहे थे। उस रात अलका ने काफी कीमती-सी बनारसी साड़ी पहनी थी और जिनका मैं दाम तक नहीं जानता, ऐसे बेशकीमती जेवरों से सजी हुई थी। लेकिन इन सबसे ऊपर, बालों में सजे हुए बेला-फूलों की वेणी में वह बेहद पावन और दिव्य लग रही थी, आज भी जब उसकी खुशबू याद आती है, तो मैं अंदर तक महक उठता हूं।

होटल लौटने पर अलका और मैं—मारे संकोच के गड़ गये। सारा बरामदा और हमारा सूट फूलों से भर गया था। फूल-ही-फूल। फूलों के अनगिनत झाड़। अनगिनत गुलदस्ते। उनकी गिनती भी असंभव थी। अलका के सिर्फ कलकतिया बंधु-बांधव ही नहीं, बल्कि दिल्ली, बंबई के शुभाकांक्षियों और प्रशंसकों ने भी कलकत्ते की दुकानों में ऑर्डर देकर हमारे यहां फूल भिजवाये थे।

अलका ने झुककर दो-एक कार्डों पर नाम पढ़ने की कोशिश की। लेकिन वह काफी बेकाबू हो चुकी थी। उसने शायद जरूरत से ज्यादा पी ली थी।

"अच्छा ! अच्छा ! ये सुबीर हैं ! ये रहे चौधरी साहब ! बेरा ! हलदार ! मि० चोपड़ा—जानते हो सूर्य, ये सब मेरे पूर्व प्रेमी रह चुके हैं। फिर भी…"

मैंने छूटते ही कहा, "अब ये बातें रहने दो, अलका ! अभी थोड़ी देर पहले तुमने कहा था न, हम एक-दूसरे के बारे में सब-कुछ जानें, सिर्फ इस मामले में अनजान रहें, तो बेहतर है ! जब तुम कुंआरी नहीं थीं, मेरी बीबी भी नहीं थीं, मैं तुम्हारे उस अतीत के बारे में बिलकुल नहीं जानना चाहता ! मुझे तकलीफ होती है।"

अलका हंस पड़ी। वह मेरे हाथों में अपनी हथेलियां उलझाकर आगे चलती गयी।

"यस यू आर राइट, सूर्य ! तुम ठीक कहते हो !"

ऐसी सुंदर, सुवेशा, बेशकीमती औरत के साथ-साथ चलते हुए मुझे

महसूस हो रहा था मानो मैं महारानी एलिजाबेथ की बगल में फिलिप माउंटबैटन की तरह चल रहा हूं।

सूट का दरवाजा खुलते ही फूलों के जाल से घिरे हुए डबल-बेड पर नजर पड़ी। फूलों की ही मसहरी। चारों तरफ बड़े-बड़े फूलदानों में फूलों के झाड़, दीवारों पर झूलती हुई लंबी-लंबी मालाएं। मेज पर एक कार्ड पड़ा था, जिस पर लिखा था—अलका और सूर्य को, शुभ-कामनाओं सहित—दीक्षित !

अलका ने मेरी तरफ अर्थभरी नजरों से देखते हुए कहा, "तो यह बात थी ? अब आयी सारी बात समझ में ? दीक्षित ने ही सबको खबर दी होगी। और कमरे में यह जो ऐय्याशी सजावट है न···यह भी उसी का आइडिया है।"

उसने कमरे में चारों तरफ निगाहें दौड़ाते हुए कहा, "ये फूल देख रहे हो ? इतनी सारी सजावट में कम-से-कम तीन-चार हजार रुपये तो लगे ही होंगे। ये फूल जितने कीमती हैं उतने ही अलभ्य भी।"

मैं लाल कालीन पर सजे हुए गुलगुले सोफे पर आराम से लेट गया और अलका को निहारने लगा। अलका ने अपनी बनारसी साड़ी उतार डाली। साटन का पेटीकोट और चोली पहने धीरे-धीरे सारे गहने उतारने लगी।

मैंने हंसते-हंसते ही सवाल किया, "इस वक्त तुम्हारी वैसी कोई इच्छा नहीं हो रही है, अलका ?"

"कैसी इच्छा ?"

अलका मेरे करीब आकर पीठ फेरकर खड़ी हो गयी। मैंने उसका हुक खोलते-खोलते कहा, "कोणार्क में पूर्णिमा की रात को जो मन हुआ था ?"

काली नायलन की जालीदार नाइटी पहनते-पहनते अलका ने ठहाका लगाया, "लेकिन यहां समुद्र कहां है ?"

"क्यों ? समुद्र दिखाई नहीं दे रहा है ?"

हमारे कमरे की नीली रोशनी भोर तक जलती रही। उस रात रेशमी साटन के सुखद स्पर्श वाला बिस्तर मानो समुंदर का रेतीला तट

बन गया था। सारी रात हम दोनों सागर की गहराई में डूब-डूबकर नहाते रहे। अलका और मैं। उस रात हम दोनों के उद्दाम प्यार की वह सेज …, मेरे जहन में आज भी ज्यों की त्यों अंकित है। उस रात का एक-एक लमहा, एक-एक पल, आज भी मुझे बहकाकर कारण-अकारण, मौके-बेमौके तमाम व्यस्तता और वास्तविकताओं से दूर खींच ले जाता है। लेकिन उस रात के आखिरी प्रहर में जाने कैसा भयंकर सपना मेरे इर्द-गिर्द कीड़े की तरह किलबिला उठा। मैंने एक खौफनाक-सा सपना देखा—हमारे चारों ओर फूल ही फूल हैं। ऊपर-नीचे, आस-पास चारों ओर फूल और फूल। हम दोनों फूल के बोझ से दब-से गए हैं। लेकिन फूलों का बोझ क्रमशः बढ़ता जा रहा है। मेरा दम घुटने लगा है। सांस अटकने लगी है। और झुंड के झुंड सरकते चेहरों की भीड़, हाथों में बड़े-बड़े पोस्टर उठाए, मुझे अनदेखा करते हुए, फूलों की ढेरी को अपने कांटेदार बूटों से कुचलते हुए आगे बढ़ते जा रहे हैं। सपने में भी वे पोस्टर काफी पहचाने-पहचाने-से लग रहे थे। फूलों की झाड़ी में पिन किए हुए विशालकाय चेहरे।

उसी छटपटाहट में मेरी नींद टूट गयी। अलका का एक हाथ बड़े बेतुके तरीके से मेरी गर्दन पर था। मैंने आहिस्ता से उसका हाथ हटा दिया। अलका बेखबर सोती रही। उसका चेहरा बिल्कुल दिखाई नहीं दे रहा था। उसके अस्त-व्यस्त बालों ने समूचे चेहरे को ढंक लिया था।

मैंने बिस्तर पर लेटे-लेटे ही कमरे में चारों तरफ निगाह दौड़ायी। कमरे के अंदर एक मैली-सी रोशनी टिमटिमा रही थी। एयरकंडीशन की कृत्रिम ठंडक, दमघोंटू माहौल, फूलों की तीखी गंध असहनीय हो आयी। खूबसूरत फूलों के बोझ से अगर गरदन टूटने लगे तो कैसा वीभत्स लगता है न? समूचे देह-मन में एक भयानक क्लांति का आभास। जुबान पर शराब की कड़वाहट और दिमाग में अजब-सा भारीपन।

मैंने उठकर एयरकंडीशन बंद कर दिया और स्काइ-लाइट जला दी। असल में मेरे पांव भी सीधे नहीं पड़ रहे थे। शायद मेरा सिर चकरा रहा था। मैंने बाथरूम में जाकर बेसिन का नल खोलकर सिर

आगे कर दिया । उसके बाद आंख-मुंह-गर्दन पर पानी के खूब-खूब छींटे मारे । उसके बाद अच्छी तरह कुल्ला करके, मोटे तौलिए से मुंह पोंछता हुआ कमरे में लौट आया ।

लेकिन फिर भी मैं अपने अंदर की वितृष्णा किसी तरह भी मिटा नहीं पा रहा था । मैं सोफे पर जा बैठा और अलका की दी हुई कीमती सिगरेट जलाकर एक लंबा कश लगाया । वाकई यह सिगरेट बहुत बढ़िया थी । लेकिन यह बात मैं किसी भी तरह भुला नहीं पा रहा था कि यह अलका का दिया हुआ उपहार है, मेरे पैसों का खरीदा हुआ नहीं है ।

इसी बीच अलका ने करवट बदली । मैंने सिर घुमाकर अलका की तरफ देखा । वह अपने सीने में तकिया दबाए, अधलेटी-सी मुझे ही देख रही थी । उसकी आंखों में मधुर कोमल तृप्ति और होठों पर हलकी-सी मुस्कराहट का आभास था ।

मुझसे आंख मिलते ही अलका ने मुझे बुलाया, "एई, यहां···पास आओ न ।"

मैंने सिगरेट का एक लंबा कश लेकर बची-खुची सिगरेट का मोह छोड़ दिया और उसे ऐशट्रे में दबाकर यंत्रचालित-सा अलका के पास आकर खड़ा हो गया, "हां, कहो—"

मेरे चेहरे पर निगाह पड़ते ही वह जाने क्यों चौंक उठी । नायलन की काली नाइटी के गहरे कटाव से झांकते हुए उसके छाती के उभार बिल्कुल साफ झलक रहे थे ।

"तुम्हें क्या हुआ है, सूर्य ?"

"देखो ना, इतने सारे फूल मुरझाए जा रहे हैं और···।"

"जिसे मुरझाना है, वह तो मुरझाएगा ही, सूर्य !"

"···लेकिन ये कार्ड ? ये तो कभी नहीं मुरझाएंगे, अलका ! सख्त बोर्ड पर या आइवरी-फिनिश कागजों पर लिखे गए अक्षर ।"

अलका ने किंचित् हैरतंगेज निगाहों से मेरी ओर देखा ।

मैंने गौर किया, उसकी आंखों की पुतलियां मानो विस्फारित हो उठी हों ।

मुझे यह महसूस करते हुए बेहद हैरानी हो रही थी कि मेरे गले

की आवाज जाने कैसी कर्कश हो आयी थी। शायद मेरे चेहरे के भाव भी जरूर वदले हुए थे। अलका ने अपनी रेशमी रजाई धीरे से अलग कर दी और बिलकुल सीधे तनकर बैठ गयी। उसके अद्भुत खूबसूरत जिस्म पर निगाह ठहरते ही मेरे समूचे शरीर में आग की लहर जैसे और तेज होकर लहक उठी। उसका वह जिस्म···भरी-भरी देह··· दीक्षित ! चौधरी ! कपूर ! अलका के मुंह से सुने हुए ऐसे जाने कितने परिचित-अपरिचित मर्दों का ख्याल आने लगा।

मैंने पूछा, "अच्छा, अलका सच-सच वताना, दीक्षित के साथ तुम्हारे कैसे संबंध थे ?"

अलका ने मेरे चेहरे से निगाह हटा ली और दवे स्वर में जवाब दिया, "कोणार्क में तुमसे मिलने के बाद, मेरा उससे कोई संबंध नहीं रहा, सूर्य !"

"स्विट्जरलैंड में ? तुम दोनों एक-दूसरे के इतने करीब थे, फिर कुछ नहीं घटा ?

"न्ना !"

"सच कह रही हो ?"

"हां—"

"दीक्षित के अलावा और किसी के साथ···?"

"ना—"

उस समय मैं इतना उत्तेजित हो उठा था कि मैंने ख्याल ही नहीं किया कि उसके गले का स्वर क्रमशः कठिन, पथराया हुआ, ठंडा और बेजान होता जा रहा था।

मैं एकदम से उठ खड़ा हुआ और अपनी उंगली की सिगरेट को पैरों से रौंदते हुए, बेसब्र लहजे में सवाल किया और तुम्हारी कोख में जो संतान है, वह सचमुच मेरी ही है न ? मेरा मतलब है, हम दोनों की ही है न ?"

अब तक वह काफी धीरज के साथ मेरे तमाम सवालों का जवाव दिए जा रही थी। अब धीरे-धीरे बिस्तर छोड़कर उसने ठोस धरती पर कदम रखा। मेरी नजरों से यह भी छिपा नहीं रहा कि वह अपने चेहरे

पर घिरती हुई टूटन को भरसक संयत रखने की कोशिश करती हुई, बाथरूम की तरफ बढ़ गयी।

मैंने फिर उसी तरह बेसब्र-सा सवाल किया, "क्यों ? क्या हुआ ? कोई जवाब नहीं दिया ?"

लेकिन अलका ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने मेरी तरफ एक बार देखा भी नहीं। और ठीक उसी पल मुझे भी एक झटका-सा लगा। सचमुच, किसी स्वनामधन्य औरत का ईर्ष्यालु पति होना कितना बड़ा अभिशाप है ?

बहरहाल यह महज शुरुआत थी। अभी तो पूरी जिंदगी पड़ी थी। पिछली रात का खौफनाक सपना अभी तक मेरे दिमाग में तेज-तेज सुलग रहा था। बहुतों के द्वारा भोगी हुई, फिर भी निष्कलंक, बेदाग उसकी देह, मेरी वितृष्णा की आग में झुलस उठी।

अलका के साथ जिन-जिन मर्दों ने रात बितायी थी, उसके अंग-संग का सुख जिया था, उसे 'यूज़' किया था, उनमें से बहुतों को तो मैं खुद जानता था।

उस वक्त मेरे जेहन में वही-वही दृश्य घूमने लगे। उनकी और अलका की देह बिलकुल···उफ।

बाथरूम से पानी बहने की अनर्गल आवाज आ रही थी। बेचारी अलका ! शायद वह अपने शरीर के सारे दाग, सारी गंदगी महज पानी से ही धो-पोंछ डालने की नाकाम कोशिश कर रही थी।

थोड़ी देर बाद, वह बाथरूम से निकल आयी। शांत! निर्विकार! संतुलित ! छोटी बांहवाली ब्लाउज। शरीर पर कोई जेवर भी नहीं। मैंने उसके सामने ही फोन पर ब्रेकफास्ट लाने का ऑर्डर दिया। अलका ने उस तरफ ध्यान ही नहीं दिया। वह ड्रेसिंग-टेबुल के सामने बैठकर चांदी के नक्काशीदार ब्रश से अपने बाल संवारती रही।

मैंने सिगरेट का कश लगाते हुए बेहद हल्के टोन में पूछा, "हांऽ अब बताओ अलका ! आज अपना क्या प्रोग्राम है ?"

अलका ने आइने में मेरी ओर देखते हुए पूछा, "तो तुम्हें भरोसा नहीं सूर्य, कि मेरी कोख में तुम्हारी ही संतान है ?"

"धत्तेरे की ! अभी तक तुम उसी बात में उलझी हो ? दरअसल, कल रात मैंने एक भयंकर सपना देखा था। जरा सोच देखो, अलका, तुम्हारी ही बगल में सोये-सोये, तुम्हारे ही बारे में ऐसा खौफनाक सपना ! तुम ही वताओ, मेरे मन में क्या वातें आयी होंगी ? क्या-क्या वातें आ सकती हैं ?"

अलका ने अपने होठों पर लिपस्टिक फेरते हुए कहा, "जानते हो, सूर्य, स्वप्न का मतलव होता है, सच ! एक किस्म का सच ! हमारे अंतर्मन के अवचेतन में जो सच, खच-खच करके चुभता रहता है, वही नींद में भी सिर उठाता है ! तुम्हें पता है ?"

जाने क्यों मैं नर्वस हो आया, "धत्तेरे की ! अब यह सब तुम··· वेकार की बातें हैं, अलका ! देखो, यूं नाराज नहीं होते अलका !"

उसी समय किसी ने दरवाजा खटखटाया। मेरी अनुमति पाकर दो बैरे सजा-सजाया नाश्ता लिए अंदर दाखिल हुए।

बैरों के जाते ही मैं अलका के पीछे आ खड़ा हुआ और उसके कंधे पर अपना हाथ रख दिया। आइने में हम दोनों के अक्स बेहद खूबसूरत लग रहे थे। सद्यस्नात, उजली-पवित्र अलका और विलकुल करीब ड्रेसिंग-गाउन में मैं। अचानक अपनी खुरदरी दाढ़ी पर नजर पड़ी, मुझे लगा मैं निहायत मोटी चमड़ीवाला, लिजलिजा पुरुष-भर हूं।

आइने में ही हम दोनों की आंखें एक-दूसरे से टकरा गयीं।

अलका ने पल-भर के लिए मेरी तरफ वेहद अजीब निगाहों से देखा और फिर निगाहें फेर लीं।

मैंने कहा, "आओ, नाश्ता कर लो !"

हम दोनों आमने-सामने बैठकर, मक्खन-लगा बेस्वाद टोस्ट चबाते रहे।

अलका खा नहीं रही थी, लगभग ठूंस रही थी। अंडा, फल, बेकन, कार्नफ्लेक्स, मछली, चिप्स···उसने कुछ भी नहीं छुआ।

नाश्ते के बाद उसने अपना पर्स समेटकर, मेरी ओर सूनी निगाहों से देखते हुए कहा, "मैं जरा बाहर जा रही हूं, सूर्य !"

मैं उससे पूछने ही जा रहा था कि वह कहां जा रही है, इससे पहले

ही वह दरवाजा खोलकर बाहर निकल गयी ।

अचानक मुझे याद आया, मेरी पत्नी अलका मुझसे सैकड़ों गुना अमीर, मशहूर और प्रतिभाशाली है । इसके अलावा मेरी पत्नी काफी सर्वजनविदित बदचलन भी है ।

मैं दुबारा बिस्तर पर लेट गया और अलका की दी हुई सिगरेट जलाने को विवश हो गया । मैं और अलका पार्क-स्ट्रीट की मलटी-स्टोरीड बिल्डिंग में फ्लैट देखने जाने वाले थे । हम लोग उस फ्लैट का नक्शा पहले ही देख चुके थे । बिल्डिंग का काम बहुत जल्दी ही समाप्त होनेवाला था । अलका टॉप फ्लोर चाहती थी, यानी बाईसवीं मंजिल वाला फ्लैट । काफी बड़े-बड़े, खुले-खुले कमरे । बाथरूम । किचेन और डाइनिंग रूम का भी आधुनिकतम इंतजाम । हर फ्लैट के साथ जेनरेटर। छत पर स्विमिंग-पूल । अलका अपने बेड-रूम और ड्राइंग-रूम के लिए कुछेक खास सुझाव भी देना चाहती थी । इसके अलावा हम दोनों का कलकत्ते में ही कोई बिजनेस शुरू करने का इरादा था । अतः हमें आज से ही प्लानिंग करनी थी और इसी सिलसिले में कई अधिकारियों और वी० आइ० पी० लोगों से भी मुलाकात करने की बात भी थी । पार्क होटल में आखिर हम कितने दिन रहते ? जब तक हमारा फ्लैट तैयार नहीं हो जाता, कोई मकान किराये पर लेने की बात सोची गयी थी ।

मैं बिस्तर पर लेटे-लेटे करवटें बदलता रहा । अलका का यह रूप पहले कभी नहीं देखा था । सर्वथा अजनबी रूप । इसका मतलब यह हुआ कि अलका जितनी जिम्मेदार और सोच-समझकर चलनेवाली औरत है उतनी ही मूडी और उच्छृंखल भी है । करवटें बदलते हुए मैंने कॉफी का दुबारा आर्डर दे डाला । कॉफी पीते हुए मैंने राजेश खन्ना और डिम्पल कापड़िया के वैवाहिक जीवन की सचित्र घटनाएं भी पढ़ डालीं । लेकिन घड़ी का कांटा कुल एक ही घंटा आगे सरका था और अलका अभी तक नहीं लौटी थी । अब मुझे गुस्सा आने लगा । उत्तेजना के मारे मेरे हाथ-पांव कांपने लगे । पिंजरे में कैद जानवर की तरह कमरे में चहल-कदमी करता हुआ, मैं क्रमशः हिंस्र हो उठा ।

अलका आखिर कहां गयी होगी ?

अब तक मैंने उसका प्यार ही जाना था, लेकिन उसके गुस्से से तो कभी पाला ही नहीं पड़ा था ।

अच्छा, अलका क्या चौधरी साहब के घर गयी होगी ? अचानक मेरी आंखों के आगे कोणार्क के रेस्ट-हाउस में शराब के नशे में लगभग बेहोश अलका की वह उच्छृंखल तस्वीर तैर गयी ।

हां, अलका को मैंने कभी गुस्से में नहीं देखा । लेकिन मेरे भीतर की कोई छठी इंद्रिय मुझसे चीख-चीखकर कह रही थी कि अलका अगर कहीं नाराज हो गयी तो दुनिया की सबसे भयंकर औरत भी बन सकती है । इस वक्त भी वह मुझसे नाराज थी । गुस्से में शायद वह चौरंगी की तरफ गयी होगी । शायद चौधरी साहब के पास ! या पार्क-सर्कस-वाले उस कपूर के पास या फिर उस फिलम डाइरेक्टर दीपंकर हालदार के पास गयी होगी, जिसने फूलों का बड़ा-सा झाड़ भिजवाया था ।

मेरे दिमाग में क्रोध की भयंकर लपटें उठने लगीं । मुझसे अब और अधिक सोचा भी नहीं गया । बिस्तर के पास ही शराब की एक मोहर-बंद बोतल पड़ी थी । मैंने बोतल खोल ली ।

मेरी जब नींद टूटी, तब शाम हो चुकी थी । नशे की कड़वी खुमारी, भयावह सपनों से भरी बेचैन नींद । मैंने जागकर चारों तरफ निगाहें दौड़ायीं । लंबे-लंबे पर्दों से ढका हुआ, ठंडा, एअरकंडीशंड कमरा । मैं बत्ती जलाकर नहाने चला गया । नहा-धोकर, कपड़े बदलकर मैं थोड़ी देर नीचे लाउंज में भी बैठा रहा । कुछ देर होटल के सामनेवाले रास्ते पर भी चहलकदमी करता रहा । इतने बड़े शहर में अब मैं उसे कहां ढूंढ़ने जाऊं ? सुहागरात के अगले ही दिन बीबी भाग गयी, यह बात

किसी भी पति के लिए सम्मानजनक नहीं हो सकती।

मेरे लौटने तक बैरों ने मेरा कमरा नये तरीके से सजा दिया था। पुराने फूलों की बासी महक से रिहाई पाकर मन तरोताजा हो आया। लेकिन मन में भयंकर दुश्चिंता भी आ समायी। अलका अभी तक नहीं लौटी। आखिर वह गयी कहां? काफी सोचते-सोचते, अचानक मुझे याद आया कि इसी कलकत्ते शहर में अलका का एक मायका भी है। मैं डगमगाते कदमों से बाहर निकल आया और किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा आ लंबे-चौड़े बरामदे में खड़ा-खड़ा अपने को तौलता रहा। कतार-दर-कतार बंद दरवाजोंवाले सूट। मुझे लग रहा था, मैं धरती-आकाशहीन, पाताल की किसी मशीनी सुरंग के द्वार पर खड़ा हूं। काफी दूर, सुरंग के अंतिम छोर पर लिफ्ट का दरवाजा नजर आ रहा था। मैं कुछ तय नहीं कर पा रहा था। लिफ्ट से नीचे जाऊं या नहीं, अभी मैं यह सोच ही रहा था कि सामने लिफ्ट की बत्ती जल उठी। लिफ्ट रुकते ही दरवाजा खुल गया।

अलका बाहर निकली।

मैं उसकी तरफ बढ़ने ही वाला था कि अलका की लड़खड़ाती हुई चाल पर निगाह अटक गयी। मुझे इतना भयंकर गुस्सा आने लगा कि मन हुआ दौड़कर जाऊं और दोनों हाथों से उस शराबी औरत का गला घोंट दूं। हां, मुझे उससे भीषण नफरत हो आयी। फिर भी मैं लपककर पहुंचा और उसे बांहों में थाम लिया। मानो उस पर बहुत बड़ा अहसान कर रहा होऊं।

अलका ने अपनी झूली हुई गरदन धीरे-धीरे ऊपर उठायी और मेरी ओर देखते हुए उसके होठों पर उदास-सी हंसी खिंच आयी।

समूचा चेहरा रक्तहीन! निस्तेज!

मैंने अस्फुट आवाज में पूछा, "मुझे छोड़कर तुम कहां चली गयी थीं, अलका? लगता है, तुमने खूब ड्रिंक किया है!"

अलका ने फुसफुसाकर कहा, "नहीं, ड्रिंक नहीं किया, सूर्य!"

"फिर?"

"एनेस्थीशिया का नशा अभी ठीक तरह से उतरा नहीं है, सूर्य!"

"तुम ? तुम क्या बेहोश हो गयी थीं, अलका ?"

अलका ने मेरे सवाल का कोई जवाब नहीं दिया। उसकी हल्की-फुलकी देह मेरी बांहों में झूल गयी।

मैंने अलका को बांहों में उठा लिया और कमरे में लाकर उसे बिस्तर पर लिटा दिया। मैं उसके पास ही बैठ गया और मेरी आंखें एकटक उसकी बंद पलकें और उसका फीका चेहरा पढ़ती रहीं। बेहोशी की हालत में वह कितनी कोमल, कितनी नाजुक, फिर भी कितनी दुखी और असहाय लग रही थी। उसका निरुपाय चेहरा अनायास ही मुझसे सब कुछ कह गया। मैंने झुककर अलका का मुंह सूंघने की कोशिश की। नहीं, शराब जैसी महक नहीं थी। मैंने उठकर अलका का पर्स खोला। उसमें भी कुछ नहीं मिला। मेक-अप के छिट-पुट सामान और कुछ रेज-गारी। हालांकि उसके पर्स में नकद रुपये, ट्रेवलर्स-चेक वगैरह मिलाकर कम-से-कम दो हजार तो हर वक्त मौजूद रहते थे। मेरे मन में जाने कैसी बुरी-बुरी आशंकाएं घर करने लगीं। आजकल कलकत्ता शहर में अक्सर वारदातें होती रहती हैं। अलका बेचारी भी क्या ऐसी ही किसी वारदात की शिकार हो गयी ?

थोड़ी देर बाद अलका ने करवट बदली।

मैं फिर अलका के चेहरे पर झुक आया, "अलका, बताओ न ! तुम बेहोश कैसे हो गयीं ?"

अलका ने अजीब-सी हंसी-हंसकर कहा, "होश में क्या वह सब बर-दाश्त किया जा सकता था ?"

अचानक मेरे मुंह से एक भयंकर चीख निकल गयी, "क्या किया, अलका ? तुमने यह क्या कर डाला ? क्या कर डाला ?"

अलका का सिर तकिये पर लुढ़क गया, "जिस पर तुम्हें भरोसा नहीं था, कि वह तुम्हारा है, उसे मैं डा० मुखर्जी के नर्सिंग-होम में फेंक आयी, सूर्य !"

अलका का सिर थकान से एक तरफ झूल गया। मुझ पर मानो वज्राघात हुआ हो। मैं वहां से उठकर आरामकुर्सी पर गिर पड़ा। अपनी जुबान से मैंने चाहे जो भी कहा हो, लेकिन मेरे मन में भी उसे

देखने की साध थी। मैं भी उसे पाना चाहता था। मैं और मेरा तन-मन किसी और के देह-मन से घुल-मिलकर एकाकार हो उठा था। उसका जीता-जागता जीवंत रूप देखने की गहरी साध मेरे मन में भी निश्चित रूप से करवटें ले रही थी।

रात कितनी बीत चुकी थी, भोर अभी हुई या नहीं—मुझे कुछ होश नहीं था। हां, तंद्रा के आलम में, मैंने कहीं कांच की खनखनाहट सुनी थी। अलका पानी पीने के लिए शायद शीशे के जग से पानी उंडेल रही थी।

मैं उठकर उसके करीब आ बैठा।

अलका ने हौले से मेरा हाथ थाम अपनी मुट्ठियों में कस लिया और बेहद धीमी आवाज में रुक-रुककर कहा, "सूर्य, दरअसल तुम उलटी धार में बहने की कोशिश कर रहे थे। मैं भी कैसी मूर्ख थी सूर्य, जो भरोसा कर लिया। सब-कुछ सच मान लिया था। मुझे लगा था, शायद तुम धार के विपरीत चल लोगे। लेकिन देखा न, धार के विरुद्ध जाना नामुमकिन है। उलटी धार में बहना आसान नहीं है।"

उसने दीवार की तरफ मुंह फेर लिया।

"सूर्य, असल में हमारी देह भी उस मंदिर की तरह है, एक बार अपावन हो जाने पर, उसमें फिर किसी देवता की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। एक अजन्मे शिशु के खून से मेरा-तुम्हारा मंदिर भी···हम दोनों का कोणार्क हमेशा-हमेशा के लिए अपवित्र और अपूजित रह गया, सूर्य!"

मुझे अलका का प्रोफाइल दिखाई दे रहा था। उसकी आंखों की

कोर से आंसुओं की मोटी धार गालों तक ढुलक आयी थी।

अलका से मेरी पांचवीं और आखिरी मुलाकात अजंता में हुई।

इसी बीच रूमा के साथ मेरा ब्याह हो चुका था। इतनी कम-सी उम्र में हम दोनों ने गरिमा के चौड़े रास्ते पर जो लॉनवाला छोटा-सा मकान बनवाया था, उसे देखकर राह चलते लोगों के मन में अनायास ईर्ष्या जाग उठती थी। हमारे पास आधुनिक ढंग के तीन बड़े-बड़े कमरे थे। सुंदर-सा कवर्ड बरामदा। जमीन से लेकर ऊपर छत तक चढ़ी हुई अबीर रंग की बोगनवेलिया की लतर।

शाम को जब अपने लॉन में ईजी-चेयर पर लेटा-लेटा आराम के लमहे जीता हूं, रूमा के हाथों तैयार की हुई चाय का सिप लेते हुए या अपना कोई प्रिय नाश्ता खाते हुए, मैं अक्सर सोचा करता हूं कि अगर मैं रूमा से ब्याह न करता तो जिंदगी में इतना सारा सुख-आराम पाना क्या संभव था?

लेकिन इतने सबके बावजूद जब कभी कोई छोटी-सी इटालियन गाड़ी मेरे बंगले के सामने से गुजर जाती थी तो मेरा जी धक्क से रह जाता था। कहीं अलका तो नहीं? अगर अलका कभी इधर से गुजरे और अगर उसे मेरा पता चले कि यह बंगला मेरा है, तो शायद वह व्यंग्य से मुस्करा देगी।

हमारा बेटा भी अब करीब साल-भर का होने को आया। रूमा का और मेरा बेटा। मैंने उसे नाम दिया है अलक। अलका से मेरा वादा था। हम अपने पहले बेटे का नाम रखेंगे––अलक, और बेटी का नाम रखेंगे सूर्या। अलक नाम के बारे में रूमा ने भी कोई आपत्ति नहीं

जाहिर की। इसके लिए मैं सचमुच उसे ग्रेट मानता हूं। उस हादसे के बाद अलका बंबई लौट गयी थी। डाइवोर्स लेने में भी हमने देरी नहीं की। हां, यह बात और है कि उस डाइवोर्स को रोकने के लिए मैं पागलों की तरह भागा-भागा उसके पास गया था। उसके फ्लैट के सामने धरना देकर बैठ गया था। दीक्षित के भी हाथ-पांव जोड़े थे। जब कुछ नहीं बन पड़ा तो समूची इंडस्ट्री में उसके खिलाफ यथासंभव स्कैंडल उछालने से भी बाज नहीं आया, लेकिन उस पर किसी बात का कोई असर नहीं पड़ा।

उसके बाद साल-भर के लिए अलका बिल्कुल लापता हो गयी। किसी को भी उसका अता-पता नहीं मालूम हो सका। बहुत दिनों बाद एक बार कलकत्ते में दीक्षित से अचानक मुलाकात हो गयी थी। उसी से पता चला कि अलका गोआ चली गयी थी।

जब मैं यहां नहीं था, रूमा खुद मेदिनीपुर जा-जाकर किसी तरह मेरी कॉलेज की नौकरी बरकरार रखने की कोशिश करती रही थी। उसने अपने हजारों झूठ-सचों से मेरे लिए लगभग छह महीने की छुट्टी का इंतजाम कर लिया था। मैंने वापस आकर रूमा को सब-कुछ बता दिया था—अपने अजन्मे शिशु के बारे में भी।

अलक के जन्म के बाद हम काफी निश्चिंत भाव से सुख और आराम का समय गुजार रहे थे।

जैसे जाड़े की गुनगुनी धूप में हलकी-हलकी गर्माहट का सुख महसूस करते हुए हम आगे बढ़ते जायें, उसी तरह अलक के जन्म के बाद, हम दोनों भी काफी निश्चिंत हो आये थे। उन्हीं दिनों रूमा ने बताया कि हमारे घूमने-फिरने लायक काफी सारे रुपये, यूं ही जमा हो गये हैं। उन रुपयों से हम अजंता, एलोरा, पूना, बंबई, अहमदाबाद का एक लंबा टूर लगा सकते हैं। बात दरअसल यह थी कि हम दोनों काफी किफायती और हिसाबी दंपति थे। हमने बैठे-बिठाए सारी योजना बना डाली और तफरीह के लिए निकल पड़े। सबसे पहले हम अहमदाबाद, रूमा के चचेरे भाई के यहां पहुंचे। वहां से बंबई, फिर पूना। पूना से औरंगाबाद। वहां से कंडेक्टेड टूरवाली बस से अजंता-एलोरा। अजंता

देखकर मैं तो दीवाना हो गया। छोटा-सा गांव—अजंता। उसी गांव के नाम पर ही इस जगह का नाम पड़ा—अजंता। घने जंगल में, क्रमशः नीचे की ओर उतरते हुए घुमावदार रास्ते। मैं मंत्रमुग्ध-सा देखता रहा। अजंता की गुफाओं पर पड़े हुए चितकबरे धब्बों को अगर उतार फेंका जाये, तो दूर से वह चींटियों की बांबी-सी नजर आ रही थी। गुफा-कतारों के समानांतर, पहाड़ों पर सीढ़ियां-सी गढ़ते हुए एक संकरा-सा झरना क्रमशः नीचे की ओर उतर गया था। झरने के अंतिम छोर पर एक कुंड बना हुआ था, जो बड़ा-सा गोल कटोरा जान पड़ता था। इस कुंड में जल ही जल था और उसके चारों तरफ की दीवारों से सटी हुई कतार-दर-कतार गुफाएं, घने जंगल।

अजंता की गुफाओं में प्रवेश करते हुए, सीढ़ियों पर लगी छोटी-छोटी दूकानों पर भी नजर पड़ी थी। मिट्टी के पारदर्शी पेपरवेट, ऐश-ट्रे वगैरह, जाने क्या-कुछ बिक रहे थे। अजंता की गुफाओं में अंकित कारीगरी के नमूने, गुहा-चित्र, पिक्चर, पोस्टकार्ड। रूमा अलक के साथ जब सुध-बुध भूलकर ये चीजें देखने में मशगूल थी, अचानक दूर खड़ी अलका पर मेरी निगाह पड़ गयी।

सूनी-संकरी मांग के दोनों ओर सपाट, संवारे हुए केश कंधों तक बिखरे हुए थे। देह पर लबादे के किस्म का ढीला-ढाला मखमली गाउन! उस पर सलमे-सितारों की बेशकीमती कारीगरी। आंखों पर गो-गो चश्मा। कंधे पर चमड़े का बैग, कैमरा और फ्लास्क। अलका की निगाह मुझ पर नहीं पड़ी थी। वह रूमा और मुन्ने को देख रही थी। किसी तेज धार की तरह पिछली स्मृतियों का रेला मेरे जेहन ने हहरा उठा और मेरा सारा हिसाब-किताब, सारी योजना बिलकुल तहस-नहस कर गया। रूमा और मुन्ने को साथ लिये मैं अलका और उसके विदेशी नौजवान साथी के पीछे-पीछे, एक के बाद एक तमाम गुफाओं के चक्कर लगाता रहा।

अलका ने काफी महंगा गाइड लिया था। वह गाइड लच्छेदार भाषा में अजंता की आकर्षक कहानियां सुना रहा था। इस प्राचीन गुहा की लोकातीत अलौकिक छाया में खड़े-खड़े हम काल, गति, जीवन की सारी

सुध-बुध खो बैठे। मेरी चेतना मानो कहीं खुलकर गिर पड़ी हो और हठात् मैं अपनी औकात, अपनी परिस्थिति, सब कुछ भूल गया। अलका के आधे-अधूरे वाक्यों के अस्पष्ट स्वर मेरे कानों से भी टकराये थे और उसी से मैंने अंदाज लगाया कि वे दोनों हमारी तरह किसी कंडक्टेड टूर में नहीं आये थे और न ही वे अजंता-एलोरा को एक दिन में देख-दाखकर छुट्टी करने वाले थे। वे लोग अजंता की मुख्य सड़क पर बने एक महंगे टूरिस्ट-होटल में ठहरे थे। वे यहां कुछ दिन बिताकर, अजंता का चप्पा-चप्पा अच्छी तरह जान-समझ लेना चाहते थे।

अलका मुझसे काफी दूर खड़ी थी। इंसान सपने में कभी-कभी अपने को ही अपने से काटकर या अपने से तोड़कर देखने-परखने की कोशिश करता है और फिर सपने में ही अपने उस सपने को झूठा मानकर तिलमिलाने भी लगता है। मैं भी अलका की तरफ उसी तिलमिलाहट से देख रहा था।

मेरी आंखों के आगे से अजंता के गुफा-चित्र मिट गये। मैं मन ही मन इस कल्पना में खो गया कि जब मैं एलोरा देखकर औरंगाबाद वापस लौट जाऊंगा और अपने होटल के कमरे में आराम कर रहा हूंगा, रूमा स्टोव जलाकर अलक के लिए दूध गरम कर रही होगी, उस वक्त अलका उस विदेशी नौजवान के साथ नीचे···और नीचे उतर रही होगी—किसी अनजाने झरने में। अजंता-कुंड में मानो वह अजंता की गुफाओं में अंकित, वही मशहूर शोकाकुल, उदास नार्सिसस यानी काली शहजादी हो। कोणार्क के मंदिर में जैसे मैं उसका दर्शक था, मुमकिन है, यहां वह विदेशी युवक भी मुग्ध भाव से उसकी काली, मोती जैसी चिकनी और तराशी हुई, संगमरमरी देह को निहार रहा होगा···दीवानों की तरह निहारे जा रहा होगा। और अलका पानी में डूबती-उतराती, नहाती हुई अपने को प्यार कर रही होगी। अपनी ही पूजा में बेलौस डूब गयी होगी।

अचानक कोई ख्याल मुझमें अजीब-सा साहस भर गया।

मैंने रूमा से कहा, "रूमा, तुम उस लड़की को पहचानती हो ?"

रूमा की निगाहें पलभर को मेरे चेहरे पर अटकी रहीं, फिर उसने सहज होते हुए कहा, "अगर अब तक न भी पहचाना हो, तो अब पह-

चान गयी।"

मैंने पूछा, "एक वार मैं उसके पास हो आऊं, रूमा?"

रूमा ने अलक को खींचकर अपने वक्ष में छिपाते हुए कहा, "जाओ, लेकिन वहुत देर मत लगाना। हमारे लौटने का वक्त हो गया है। एलोरा जाना है न। कुछेक मिनटों में बस छूटने ही वाली है!"

मैं भागता-दौड़ता अलका के पास पहुंचा।

मुझे देखते ही अलका मेरी तरफ घूम गयी और मुझे चौंकाते हुए, एकबारगी कमेंट दिया; "तुम्हारे वेटे की सूरत-शक्ल हूबहू तुमसे मिलती है। रूमा से वह विलकुल नहीं मिलता।"

मैंने हंसकर कहा, "हां, और जानती हो, उसका नाम है अलक।"

अलका वेहद अजीब हंसी हंस पड़ी।

मैंने पूछा, "मेरा खत तो मिला होगा, जवाव क्यों नहीं दिया?"

"जवाव देकर क्या होता?"

उस विदेशी युवक ने कोई उत्सुकता नहीं दिखायी। वह दीवारों के चित्र देखने के वहाने चुपचाप कुछ दूर हटकर खड़ा हो गया। मैंने आसपास निगाहें घुमाकर देखा। आदिम युग में अंकित महात्मा बुद्ध की जीवन कथा। मेरी निगाहें वार-वार उससे कुछ फासले पर खड़े, उसके विदेशी साथी पर ठहर जाती थीं। अचानक मुझे आतंकित रूमा और उसकी गोद में निश्चित अलक का ख्याल हो आया।

मैंने मुड़कर दुबारा पूछा, "वताओ न, अलका, क्यों? तुमने मेरे खत का कोई जवाव क्यों नहीं दिया?"

अलका हंस पड़ी! शांत! निश्छल हंसी!

"मुझे तुम्हारा खत पढ़कर बहुत हंसी आयी थी, सूर्य! उत्तर क्या देती? उसे तुम खत कहते हो? वह तो तुम्हारी नाराजगी थी। झूठ-मूठ की नाराजगी। तुमने लिखा था, रूमा तुम्हारी जिंदगी की रोशनी है, और मैं धूमकेतु। रूमा तुम्हारा सच्चा प्यार है और मैं महज आकर्षण—यही सब आलतू-फालतू, वेसिर-पैर की बातें ही तो लिखी थीं तुमने? लेकिन सच तो यह है कि वे सब तो महज अपने आपको भुलावा देने की बातें थीं। अपने को वहलाना-भर था। किसी जीते-जागते सच

को झुठलाने का मनगढ़ंत तर्क। वैसे उन दिनों ये सब मुगालते तुम्हारे लिए बेहद जरूरी भी थे, सूर्य !"

उस अंधेरी गुफा में अलका ने अचानक मेरे दोनों हाथ थाम लिये। उस दिन मेरा हाथ पकड़े-पकड़े उसने जो कुछ कहा, उसकी आवाज में मानो कोई देव-वाणी गूंज उठी हो। सुनो, सूर्य, मैं तुम्हें प्यार करती हूं। और तुम भी सिर्फ मुझे ही प्यार करते हो। लेकिन बताओ, हम कर ही क्या सकते हैं ? हम दोनों का प्यार सूर्य-देवता की उस मूर्ति की तरह था, सूर्य ! जिसको मंदिर के भीतर कभी प्रतिष्ठा नहीं मिली ! सूर्य-देवता ! चिलचिलाती धूप में जलते-तपते रहते हैं, भयंकर पानी-बरसात में भीगते रहते हैं, कुदरत की चोटें खा-खाकर टूटते-ढहते रहते हैं—लेकिन उन्हें कभी पूजा नहीं मिलती। प्रतिष्ठित होने के लिए कोई मंदिर तक मयस्सर नहीं। लेकिन फिर भी लोग उनका तेज देखकर मुग्ध होते हैं, वाह-वाह करते हैं।"

मैंने अलका की आंखों में झांकते हुए पूछा, "तुम सच कह रही हो, अलका ? हम दोनों सिर्फ एक-दूसरे को ही···"

"हां, माइ डियर, सूर्य ! अनफौरचुनेटली, येस। बदकिस्मती से, हम एक-दूसरे को ही प्यार करते हैं।"

मेरे समूचे तन-बदन में झुरझुरी-सी फैल गयी।

हां, उस दिन मैं बखूबी समझ गया था कि अजंता की गुफा में चूल्हा-चौका नहीं किया जा सकता। पत्थर की दीवार में कील ठोककर, दिन-रात, महीने-वर्ष का हिसाब रखने वाला कैलेंडर नहीं टांगा जा सकता। अपने मन के संगी, बिलकुल अपनी सांस-सांस के संगी के साथ, महज हवश बुझाने के लिए जानवर की तरह मांसल मन-प्राणहीन रमण नहीं किया जा सकता।

मैंने अलका के हाथों से धीरे से अपना हाथ छुड़ाते हुए, मन ही मन विदा मांगी—"अब चलूं अलका, रूमा के पास, अलक के पास, अपनी बंधी-बंधायी जिंदगी में। दूर खड़ी रूमा, अलक और एलोरागामी बस मेरी प्रतीक्षा में हैं।"

अलका से वह मेरी आखिरी मुलाकात थी। गुफा-द्वार पर, उस अद्‌भुत मेघभरी दोपहरी में हंस-हंसकर हाथ हिलाती हुई अलका ! क्रमशः वह इतनी नन्ही-सी हो आयी कि मेरी निगाहों से बिलकुल ओझल हो गयी, लेकिन उसी पल मेरे मन की गहराइयों में क्रमशः इतनी बड़ी होती गयी कि मेरे तन-मन-आत्मा पर पूरी तरह छा गयी।

●●●

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 94322
Date 9-2-2000
SIMLA.

18-8-2000.

और के सहारे की उम्मीद महज एक भ्रम है—इस भ्रम से उवरकर, मैंने अपने हिस्से की लड़ाई, खुद लड़ने का फैसला किया। कामयावी का दावा भले न करूं, लेकिन इतना तो हुआ कि अपनी ताकत से परिचित हुई। उम्र ? मुझसे मेरे तजुर्वों की उम्र वड़ी है—यही मेरी उपलब्धि है।

कविता सिंह

आठ वर्ष की उम्र से कलम पकड़ी। पकड़ मजवूत हुई या नहीं, पता नहीं ! हां, आत्मविश्वास जरूर मजवूत हुआ। कई बार आमन्त्रण पर विदेश-यात्रा। लगभग दस उपन्यास व चार काव्य-कृतियां प्रकाशित। कई भारतीय व विदेशी भाषाओं में कृतियों का अनुवाद □

सुशील गुप्ता

किन्हीं वेहद उदास पलों में, राह चलते, कोई अचानक मिल गया···यूं ही। एक जोड़ी आंखों ने मेरी तमाम मोहताजी मिटाकर कहा, "लो, मैं तुम्हारे साथ हूं। मुझे हराना नहीं, क्योंकि मैं तुम्हारी जीत हूं।" और··· हथेलियां 'पुल' वन गयीं··· मैंने एक वार फिर जीने, खुश होने की कसम खायी। ···लेकिन, वात इससे भी वहुत पहले की है···। वेईमानी के पथराव में जख्मी, मेरा व्यक्तित्व गुम होने लगा था; अनुवादों ने मामूली-सी ही सही, मुझे एक पहचान दी थी। अपनों के झूठ के बजाय औरों के सच को दुहराना राहत भी देता है, राह भी। अनुवाद मेरे लिए राहत भी है और राह भी। इसे मेरा दुस्साहस न समझा जाए तो मैं कहूं, अनुवाद महज मशीनी भाषांतर ही नहीं, वल्कि यह अनुकृति है। अव तक दस पुस्तकें वंगला से अनूदित प्रकाशित और लगभग छः उपन्यास प्रेस में।□